राजधानी के कवि

भूमिका

शिवदानसिंह चौहान

संपादक

गोपालकृष्ण कौल

रामावतार त्यागी

प्रकाशक

निर्माण प्रकाशन, दिल्ली

आमुख

बीते दिनों की याद हमेशा सुखदायी होती है। मनुष्य बड़े सहज भाव से कह जाता है—"अब क्या रखा है, पहले ऐसा होता था !" इसी तरह आजकल पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं को पढ़कर जी बरबस कह उठता है—अब कविता में क्या रखा है ? कविता तो तब होती थी जब हम छोटे-छोटे विद्यार्थी थे और एक ओर यदि 'प्रिय-प्रवास' और 'साकेत' की पंक्तियाँ चकाचौंध मचाती थीं तो दूसरी ओर प्रसाद, पंत, निराला के गीत हृदय में रस की धार बहाते, कहीं प्रसून खिलाते, तो कहीं आँखों में करुणा के आँसू छलकाते थे। पर आज की कविता कहीं से जैसे हृदय को छूती ही नहीं। आपने कहीं ऐसी रमणी को देखा है जो आँख मिलाते ही आपके प्रति आक्रोश और धिक्कार से भर उठे और निर्जन पथ में भी अपने दामन को जैसे कल्पित दस्युओं से बचा कर चलती हो ? आजकल की कविता ऐसी ही कामिनी है। वह किसी के हृदय को छूना नहीं चाहती और पाठक उसे छूने का साहस नहीं कर पाते; क्योंकि वह प्रयोगशील है, जैसे अपने शृंगार-कक्ष में हो, अस्त-व्यस्त हो, यह निर्णय न कर पाती हो कि आज कौन-से रंग की साड़ी पहिने ! उसे शिष्ट पाठक यदि देख भी सके तो अपना शिष्टाचार छोड़ कर क्यों देखे ?

इधर हमें दो बार ऐसे प्रयोगवादी कवियों की कविता-कामिनियों के शृंगार-कक्षों में भ्रमण करने का सुयोग मिला है और वहाँ शृंगार-प्रसाधन के जो विशिष्ट उपकरण कहीं करीने से सजे और कहीं बिखरे-छितरे पड़े हैं, उन्हें और अपने प्रसाधन में लगी उन कामिनियों को हर

अवस्था में देखने के लिए हम विवश किये गए हैं। प्रसाधन करके निकली तरुणी को देखकर सहसा मन पर जो सुखद आघात होता है और एकटक निहारते रहने में ही जहाँ सार्थकता मिलती है वहाँ अपने प्रसाधन-कार्य में व्यस्त रमणी को रुज और पाउडर मलते, लिपस्टिक और क्यूटेक्स लगाते, एक के बाद दूसरी साड़ी को जाँच-परख कर कमरे में इधर-उधर फेंक कर क्या पहिने क्या न पहिने का निर्णय न कर पाते देख कर उतनी ही वितृष्णा और खीझ भी होती है—और जब रमणी की योग्यता ऐसी हो कि साड़ी पर कुर्ती पहिने और सलवार पर ब्लाउज़, ओठों पर काजल लगाये और आँखों पर लिपस्टिक, और फिर भी अपनी आधुनिकता की डींग हाँके, तो उस समय सौन्दर्यग्राही दर्शक क्या कहे क्या न कहे, यह भी क्या बताने की बात है? प्रयोगशील कवियों की कविता-कामिनियों के श्रृंगार-कक्ष में हमें कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ।

इधर जब से प्रयोगवाद और प्रयोगशील कविता की चर्चा इतनी अधिक रही है तब से लोगों ने एक प्रकार से विश्वास कर लिया है कि हिन्दी की नई कविता यही है। जो कवि पुराने हैं वे तो पुराने ही हैं, या कहें पुराने पड़ गए हैं, फैशन बदल गया है—रुचि एक बिन्दु पर कब ठहरती है, वह भी बदल गई है। पर यह रुचि किसकी है? यानी यह जो प्रयोगशील कविता है, इसके लिए सर्वसाधारण में कितना उत्साह है? हमें नहीं दीखा तो हमने पूछा। मालूम हुआ जो सप्तकों में आगए हैं और नये सप्तकों में आने के आकांक्षी हैं वे सब के सब ही इन कविताओं के घोर प्रेमी हैं। किसी नये फैशन या नई रुचि के समर्थकों की इतनी संख्या क्या कम है? लेकिन हिन्दी का साधारण पाठक प्रयोगवादी कवियों के इस आत्म-विज्ञापन से यह परिणाम निकाल कर कि शायद आज की कविता जैसी कुछ है बस यही है, कविता से ही मुँह मोड़ बैठा है।

तीन

इसलिए जब श्री त्यागी जी और श्री कौल जी ने राजधानी के कवियों के संग्रह की भूमिका लिखने का आग्रह किया तो मुझे लगा कि सात की कौन कहे लगभग साठ कवियों की कविता-कामिनियों के शृंगार-कक्ष का मुलाहिज़ा करना पड़ेगा और मेरी तो रुह ही काँप गई। भय हुआ कि न जाने कितने अनगढ़ रूप, कितने तोतले और उलटे स्वर देखने-सुनने को मिलेंगे और मेरी कल्पना को अर्थबोध के लिए असाध्य कलाबाजियाँ करके दिन को अंडा और सन्ध्या को चील समझने की तुक बैठानी होगी। अर्थ का बाण कैसे सधेगा, मेरी कुछ समझ में न आया। लेकिन मित्रों के आग्रह को दुराग्रह बनने में कब देर लगती है ? बहुत छिपा, टालमटोल की, अनुनय-विनय की, किन्तु बेकार। और लीजिए मैं आपके सामने हूँ। पर अब उतना भयभीत नहीं हूँ; क्योंकि साहस करके एक बार सब कविताओं को पढ़ गया हूँ। और एक आलोचक के नाते तो नहीं परन्तु साधारण रसग्राही पाठक के रूप में यह साक्षी तो दे ही सकता हूँ।

दिल्ली समरस और समतल नहीं है। पहाड़ी भी है, मैदान भी; उपजाऊ भी है, बन्जर भी; नई भी है और पुरानी भी। इस संग्रह के कवि और उनकी कविताएँ भी इस दिल्ली के ही अनुरूप हैं। इनमें पुराने सिद्धि-प्राप्त कवि हैं, प्रयोगशील और प्रगतिशील भी हैं और ऐसी अनेक नई प्रतिभाओं के चश्मे भी हैं जिन्होंने अभी कोई धारा नहीं पकड़ी है। इसलिए सारी कविताओं में षट्रस का स्वाद है—सचमुच एक रस तो नहीं है, हे भगवान् ! इनमें जो पुराने और सिद्धहस्त कवि हैं वे इस संग्रह में जैसे नयों को आशीर्वाद देने के लिए हैं। वे जब नए रहे होंगे तब कदाचित् उन्हें भी अपने बुजुर्गों की वरद-छाया मिली होगी; फिर वे स्वीकृत हुए, मान्य हुए, समादृत हुए, जनता के हृदय-सिहासन पर बैठे और आँखों पर चढ़े। आज वे इस संग्रह में उन अनेक तरुण कवियों

को ले रहे ह जो संघर्षशील हैं, जिन्हें मान्य होना है, जिन्हें जनता के हृदय में स्थान बनाना है। इस संग्रह की यह विशेषता है। एक अपूर्व सहयोग का यह प्रतीक है।

बड़ों की बात छोड़ें। वे स्वनाम-धन्य हैं। पाठक-वर्ग के लिए पूर्व-परिचित हैं। और जो प्रयोगशील हैं वे सप्तकों में अपना विज्ञापन स्वयं कर चुके हें, परन्तु जो बिलकुल नए हैं और अधिक से अधिक जिनकी गति कवि-सम्मेलनों तक ही रही है, या यदि उनकी कविता-पुस्तक छपी है तो विज्ञ आलोचकों की कृपादृष्टि पाने में असमर्थ रही है—ऐसे अनेक तरुण कवियों की कविताएँ इस संग्रह में मार्मिक ही नहीं स्मरणीय भी हैं। उनमें सच्ची अनुभूति का प्रकाश है।

यह जीवन और जगत् प्रकृति का एक अद्‌भुत करिश्मा है। मनुष्य कर्ता है, विषयी है और इस नाते ही वह जीवन और जगत् के वैविध्य-पूर्ण परस्पर सम्बन्धों और अन्तर-सम्बन्धों की जटिल वास्तविकता, प्रकृति और मानव के संघर्ष और सत्य और समृद्धि के प्रति आदिकाल से ही एक विस्मय और उल्लास का बोध करता आया है और इस रहस्यमय अनुभूति से ही कविता के चश्मे फूटे हैं और मनुष्य का हृदय बार-बार रसधारा से आलुप्त होता आया है।

आधुनिक हिन्दी-कविता को लें तो छायावादी कवियों में और तत्त्वों के अतिरिक्त यह विस्मय-भावना विशेष रूप से मुखर थी। एक शिशु की-सी अबोध सरलता से वे अपने विस्मय को प्रकट करते थे, किन्तु उनके प्रकृति और जीवन के चित्रण में एक सुसंगत विचारसूत्र का उद्‌घाटन होता था जिससे उन कविताओं में हमें एक विशेष पैटर्न मिलता है। लेकिन बाद के प्रयोगशील कवियों में यह बात न रही। यह तुकान्त और

अतुकान्त, छन्द और मुक्त-छन्द का प्रश्न नहीं। प्रयोगवादी इसलिए प्रयोगवादी हैं कि उनमें एक किशोर बालक का-सा उद्धत भाव है, बौद्धिकता का तो कोरा उपक्रम है। उनके रूपक और उपमाएँ किसी साधर्म्यता का आधार नहीं लेतीं, वे इतनी निर्जीव और असम्बद्ध होती हैं कि उनका साधारणीकरण सहज नहीं। इसलिए इन कविताओं में शब्दाडम्बर का मोह अधिक है। अर्थ-गम्भीरता और अनुभूति दब जाती है। प्रयोगशील कविताओं में जैसे लगता है, विचार का ताना-बाना भीतर कहीं उलझा है और कोई पैटर्न साफ़ नहीं बन पाता।

लेकिन यह जो शेष, कौल, त्यागी, दिनेश, शान्तिसिंहल आदि इस संग्रह के अनेक नए कवि हैं, उनकी कविताओं में एक साफ़-सुथरा पैटर्न पाकर मुझे आश्चर्य भी हुआ और हर्ष भी। अन्तःस्वर भी इनका उदात्त है, जो एक अच्छे कवि का पहिला गुण है। इनकी कविता में विस्मय भी है और एक सक्रिय जीवन-द्रष्टा की सप्रश्नता भी है। जिस अनुभूत विचार का उद्घाटन करना चाहा है उसे सुसंगत मर्म-छवियों के द्वारा इन्होंने मूर्त और साकार बनाया है। ये कविताएँ सहज और संवेदनीय हैं। इनकी अनेक पंक्तियाँ स्मरणीय हैं। पढ़ कर कुछ दुविधा में पड़ गया हूँ कि प्रयोगशील कविताओं को हिन्दी की नई कविताएँ कहूँ या इन्हें ? यह दुविधा सभी पाठकों को होगी, यह शुभ लक्षण है। विज्ञ आलोचक और पाठक चाहे जो निर्णय करें पर इतना तो निश्चय है कि इन तरुण कवियों की कविता हिन्दी की परम्परा से आमूल-विच्छेद करके अपने मुँह मियाँ मिट्ठू नहीं बनी है; बलिक नयी सुघड़ उपमाओं और रूपकों से, नये भाव-विचारों से उस परम्परा को विकसित करने में प्रयत्नशील हैं। यह नई कविता इनके हाथों में अभी और मंजेगी,

संवरेगी, उसमें युगान्तरकारी विचारों को गहरी कलात्मक अभिव्यक्ति मिलेगी, ऐसा विश्वास करने को जी करता है। इन कवियों की प्रतिभा विकास करे, यही मेरी कामना है।

—शिवदानसिंह चौहान

सम्पादकीय

यदि विश्व के सभी देशों में कवियों की जन-गणना की जाय तो भारत में सब से ज्यादा संख्या में कवि मिलेंगे। छोटे-छोटे गाँवों से लेकर बड़े-बड़े शहरों तक—सब जगह एक ओर अनेक लोक-कवि, जनकवि, और कवि मिल जाते हैं, चाहे उपन्यासकार और कहानीकार न मिलें। शायद इसीलिए 'राजधानी के कवि' में साठ के ऊपर कवियों की संख्या पहुँच गई है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि दिल्ली का कोई कवि इस संग्रह में नहीं छूटा है। क्योंकि संग्रह दिल्ली के कवियों की गणना-पुस्तक नहीं; बल्कि नई-प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने का सामूहिक, साँस्कृतिक प्रयत्न है। आप कह सकते हैं कि 'प्रकाश में लाने' से क्या मतलब, जब कि हिन्दी के प्रतिष्ठित कवियों के कविता-संग्रह प्रकाश में आकर भी पुस्तक-विक्रेता के अन्धेरे गोदाम में पड़े-पड़े दीमक का नाश्ता बन जाते हैं। यह आम शिकायत है कि कविता बिकती नहीं; फिर भी वह प्रकाश में आती है। और यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आज भी कविता ही साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप है। इस-लिए न बिकने की दलील से कविता का प्रकाश में आना नहीं रुक सकता; क्योंकि कविता का प्रकाशन मूलतः एक सांस्कृतिक उत्थान का कार्य है, व्यापार का बाद में। कविता केवल हिन्दी में ही नहीं बिकती, ऐसी बात नहीं है। आज दुनिया की लगभग सभी भाषाओं में बिकने की दृष्टि से नये कवियों की कविताएँ ही सबसे ज्यादा घाटे में हैं। घाटा इस-लिए क्योंकि कविता-पुस्तकों को बेचकर कोई कवि अपनी रोज़ी नहीं

चला सकता । आज ब्रिटेन जैसे सांस्कृतिक देश के नए कवि अपनी रोज़ी चलाने के लिए होटलों में वर्तन माँजते हैं; फ्रांस में युवक-कवि मजदूरी करते हैं और हिन्दुस्तान में पान की दूकान तक खोलते हैं । यह सब होते हुए भी कविता अमर है और कवि भी पैदा होते रहते हैं । आज की आर्थिक विषमता कवि को अकाल-मृत्यु का ग्रास बना सकती है, किन्तु कविता तो जीवित ही रहेगी ।

इस संकट का सामना सहयोगी सांस्कृतिक प्रयत्नों के द्वारा सम्भव हो सकता है । एक कवि की अनेक कविताओं का संग्रह न छप सके तो अनेक कवियों की अनेक कविताओं का एक संग्रह छाप कर केवल नये-नये कवियों को ही प्रकाश में नहीं लाया जा सकता, बल्कि काव्य की नई प्रवृत्तियों को भी इस बहाने समझा जा सकता है । नई कविताएँ ही काव्य की नई प्रवृत्तियों का सही-सही मूल्यांकन करने में रास्ता बता सकती हैं । दूसरी भाषाओं में ऐसे प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं । फ्रांस में सन् १९५१ में चालीस के लगभग नए कवियों की कविताओं का एक संग्रह छापा गया, जिसकी आलोचकों ने बड़ी चर्चा की । बंगाली भाषा के कवि भी ऐसे सामूहिक सांस्कृतिक प्रयत्नों से नई काव्य-चेतना को प्रकाशित करते रहे हैं ।

हिन्दी में यह अपने ढंग का पहला प्रयत्न है, इसलिए अनोखा भी लग सकता है । कहा जा सकता है कि यह मात्र परिचयात्मक है; किसी विशेष मताग्रह पर आधारित नहीं है । किन्तु इस संग्रह की सार्थकता इसी में है कि यह हिन्दी की नई कविता के तमाम प्रवाहों के विविध रूपों को एक जगह उपस्थित करता है । इसमें पुरातन और नूतन, प्रयोग और प्रगति, गेय और अगेय, प्रौढ़ और अमेच्योर सभी प्रकार की कविताएँ हैं और साथ ही प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध भी । फिर भी कम कविताएँ ऐसी हैं जिन्हें बौद्धिक व्यायाम कहा जा सके; चाहे वे अपनी सहजता में दुर्बल

अवश्य दिखाई पड़ें। अधिकांश कविताएँ हृदय को छू सकती हैं या कविताओं को पाठक का हृदय छू सकता है।

आलोचकों की दृष्टि इस संग्रह को किस रूप में देखेगी—यह उनकी दृष्टि के पूर्वाभ्यास और स्वभाव से अनुमान लगाया जा सकता है, किन्तु लोक-दृष्टि में यह सम्मान पाएँ इतना तो हम अवश्य चाहते हैं। अभिप्राय यह नहीं है कि आलोचक की दृष्टि आज साफ़ नहीं है; बल्कि यह है कि उसकी विद्वत्ता के मद से झुकी पलकों को इन कविताओं को देखने के लिए ऊपर उठने का अवकाश कहाँ है ?

आज हिन्दी-कविता का मूल्यांकन करने वाली दो कसौटियाँ हैं—एक आलोचक की दृष्टि और दूसरी लोक-दृष्टि (लोक-रुचि नहीं)। आलोचकों की दृष्टि-क्षमता साहित्यिक पत्रों और आलोचना-पुस्तकों में देखने को मिलती है और लोक-दृष्टि की कवि-सम्मेलनों में। 'कवि-सम्मेलन की कविता' और 'छपी हुई कविता' में भेद करके आज की नई कविताओं का मूल्यांकन सम्भव नहीं है। यह कहना कि कवि-सम्मेलन में घटिया कविताएँ ही जमती हैं और पत्रों तथा पुस्तकों में उत्तम कविताएँ छपती हैं, भ्रम है। किसी कवि को 'कवि-सम्मेलन का कवि' कह कर न तो उसकी उपेक्षा की जा सकती है, और न केवल छपी होने के कारण किसी कविता को उत्तम काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। घटिया कविता कवि-सम्मेलन के नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की तरह अनसुनी रह जाती है और यदि दयावश या गेयता के कारण सुन भी ली गई तो कानों से दिल तक नहीं पहुँचती। इसी तरह किताबों और पत्र-पत्रिकाओं में छपी घटिया कविता केवल छपने से श्रेष्ठ नहीं बनती; बल्कि कागज़ की क़ब्र में अपने को दफ़ना देती है। इसलिए लोक-दृष्टि की उपेक्षा करके केवल कागज़ों पर प्रकाशित कविता को जो आलोचक मूल्यांकन के लिए चुनते हैं, उन सबकी दृष्टि एकांगी है और आज प्रायः हिन्दी आलोचक इस बौद्धिक

एकांगी पक्षाघात से पीड़ित हैं। परिणाम यह है कि कुछ छपी कविताओं को लेकर भारत की आबादी की तरह उपजने और बढ़ने वाले नए-नए वादों के रोगग्रस्त कृशकाय शिशुओं के पालन-पोषण में ही ये आलोचक अपनी सारी विद्वत्ता व्यय कर देते हैं; फिर भी वे हिन्दी-कविता के सहज प्रवाह की गति का स्पर्श नहीं कर पाते हैं। उनकी आलोचना मताग्रहों पर अधिक आधारित होती है, जीवनाग्रह और कला के आग्रह पर कम। वे ऐसे संकीर्ण मूल्यांकनों से नई प्रतिभाओं को दलों के दल-दल में फंसने के लिए मजबूर भी कर देते हैं; लेकिन साथ ही उनकी कला-साधना के चेहरे पर पड़े कीचड़ के छींटों पर मुँह भी बिचकाने से बाज़ नहीं आते। आलोचकों के मताग्रह से नई कवि-प्रतिभाएँ मतवादों के व्यूह में भटक कर कला और जीवन के मार्ग से च्युत हो जाती हैं; क्योंकि ऐसी स्थिति में नए कवि को आलोचक का शास्त्रीय समर्थन प्राप्त किए बिना साहित्य के बाज़ार में अपने पैर जमाना कठिन प्रतीत होने लगता है और इसीलिए आलोचक उसके लिए मूल्यांकनकार न रह कर केवल प्रशंसक या निन्दक—दूसरे अर्थों में मात्र प्रचारक रह जाता है। योरुप में, विशेषतः फ्रांस के क्षितिज से, बीसवीं सदी के आस-पास ऐसे ही साहित्यिक वादों के बादल उठे और चारों ओर बरसने लगे—प्रभाववाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद और दादावाद आदि के रूप में अनेक वादों ने नई प्रतिभाओं के मन और मस्तिष्क को घेर लिया। वहाँ की राष्ट्रीय ऐतिहासिक परिस्थितियों और सांस्कृतिक परम्पराओं को देखते हुए वहाँ की कला के विकास में किसी न किसी रूप में ये नानावाद सहायक हुए; किन्तु भारत की ऐतिहासिक परिस्थितियों और सांस्कृतिक परम्पराओं को देखने पर लगता है कि भारत में साहित्यिक वादों का आविष्कार जानबूझ कर फैशन के तौर पर किया गया और इसीलिए वह यहाँ के कला-विकास में विशेष सहायक न हो सका, अलबत्ता उसने भारत की क्लासिकल और जनवादी साहित्यिक परम्परा को भ्रष्ट अवश्य किया। ऐसे वादों का यहाँ की प्रतिभाओं पर ऊपर से आरोपण

हुआ है, वे जीवन और कला की समस्याओं के कारण उद्भूत नहीं हुए हैं। इस प्रकार ऐसे संकीर्ण वाद अनुकरण ही रहे हैं और अनुकृति कभी श्रेष्ठ कला-कृति नहीं हो सकती। ग़नीमत है कि हिन्दी में तमाम ऐसे वादों का समुच्चय एक वाद में हो गया है और उसे प्रयोगवाद की संज्ञा दे दी गई है। प्रयोगवाद के नाम पर हम केवल उस वाद का विरोध करते हैं जो केवल प्रयोग के लिए प्रयोग का समर्थक है; वैसे नई सम्भावनाओं से प्रेरित नई विषय-वस्तु को अधिक प्रभावशाली अभिव्यक्ति देने वाले किसी भी सजीव प्रयोग से साहित्य की प्रगति ही होती है और इस प्रकार के प्रयोग सदा होते आये हैं। प्रयोग का अर्थ है प्रगति, पलायन नहीं।

प्रस्तुत संग्रह में सभी प्रकार की कवितायें हैं और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह पूरा संग्रह किसी वाद-विशेष, शैली-विशेष या प्रवृत्ति-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। नये कवियों के अतिरिक्त विविध प्रवृत्तियों और शैलियों के प्रतिष्ठित कवियों की कवितायें भी इसमें हैं। जहाँ इसमें छायावादी युग के राष्ट्रीय कवि पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन की रचनायें हैं, वहाँ राष्ट्रीय उत्थान के सांस्कृतिक प्रगतिशील कवि पं० उदयशंकर भट्ट की भी कवितायें हैं। जहाँ हिन्दी की कला-चेतना को अपने प्रयोगों से समृद्ध करने वाले, हिन्दी की एक शक्ति 'अज्ञेय' जी की कवितायें इसमें हैं, वहाँ हिन्दी की नई कविता के समर्थ प्रतीकवादी कवि गिरजाकुमार माथुर और प्रभाकर माचवे की भी कवितायें हैं। इसी प्रकार दूसरे प्रसिद्ध कवियों की भी अपने-अपने प्रकार की कवितायें हैं। साथ में व्यंग और हास्य के लोक-प्रिय कवि गोपाल-प्रसाद व्यास की रचनायें अपनी एक अलग विशेषता रखती हैं; क्योंकि कहना न होगा कि अभी तक हिन्दी में नई कविता का मूल्यांकन या आकलन करते समय हास्य और व्यंग की कविताओं की ओर ध्यान नहीं दिया जाता रहा है जबकि आज के सामाजिक जीवन की यथार्थता को उद्घाटित करने में हास्य और व्यंग की कवितायें ही

अधिक समर्थ हैं। और फिर हिन्दी में रुबाइयात और ग़ज़ल के सफल कवि शम्भुनाथ शेष की कविताएँ भी इस में हैं। इस दृष्टि से ये कवितायें इस संग्रह में हिन्दी की विविध काव्य-प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

इतने वैविध्य के बीच भी इस संग्रह की कविताओं में जो सामाजिक असन्तोष की भावना और मानवोत्थान की नवीन सम्भावना का एक उदात्त स्वर सभी में न्यूनाधिक मात्रा में व्याप्त है वह एक ऐसी एक-सूत्रता है जो हिन्दी की नई कविता के नव-निर्माण में तमाम वादों की संकीर्णताओं के बावजूद जीवन और कला के सामञ्जस्यपूर्ण आग्रह को सामने रखकर उसकी नई प्रगति की दिशा-बोधक है।

निश्चित ही इस संग्रह की सब कवितायें एक स्तर की नहीं हैं; हो भी नहीं सकती थीं, क्योंकि कवितायें एक ही कवि की नहीं हैं। साठ कवियों की कविताओं का यह संग्रह है जिनमें रूप और वस्तु की, दृष्टि और कला-सामर्थ्य की विविधता है। फिर भी नये कवियों की कविताओं में लय और स्वर का तारतम्य है, वस्तु-सापेक्षता है; भले ही शैली में मँजाव की आवश्यकता हो। इस संग्रह में अलग-अलग किसी कवि की कविता के विषय में हमारे लिए कुछ कहना न तो समयानुकूल है और न सम्भव है। क्योंकि यह स्पष्ट है कि इसमें नये कवियों की कविताओं में प्रौढ़ और अमेच्योर दोनों प्रकार की रचनायें हैं और अधिकांश निर्माण के क्रम में हैं। इसलिए उनके विषय में किसी निश्चित मत की घोषणा करना कठिन है; फिर भी यदि उनके विकास-क्रम को सहानुभूति से देखा जाय और विद्वत्ता से उसका अतिक्रमण न किया जाय तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन कविताओं के मूल में वर्तमान सामाजिक जीवन की विविध परिस्थितियों के संघर्ष से उद्भूत बेचैनी है जो संभावित मानवीय आदर्श की ओर प्रेरित करने वाली उन

उदात्त भावनाओं को कला के वस्तु-सत्य का आधार बनाती है, जिनके बादल आज के कवि के हृदयाकाश में उमड़ते-घुमड़ते रहते हैं।

हम अनेक परिस्थितियों के कारण पुस्तक में कोई क्रम नहीं कर पाये हैं। बस जैसे-जैसे सामग्री आती गई वैसे ही छपती चली गई है। इसलिये आगे-पीछे का सवाल, आशा है, उठाया नहीं जायेगा। रचनायें स्वयं अपनी प्रौढ़ता और उच्चता का प्रमाण होती हैं। बात इसलिए उठाई गई कि कुछ लोग, जो क्यू में खड़े होने के आदी हैं, स्थान के लिए झगड़ भी सकते हैं और तुरन्त संपादकों की नीयत की जाँच-पड़ताल शुरू हो जाती है। जहाँ तक हमारी नीयत का सवाल है, हम केवल इतना ही निवेदन कर सकते हैं कि वह साफ़ है।

संग्रह को जिस योजना के अनुरूप हम लाना चाहते थे, स्पष्ट है, उस रूप में नहीं ला सके हैं। हो सकता है इस पर कुछ रोष भी हो, झुंझलाहट भी हो; लेकिन सवाल यह है कि इतनी सामग्री को हिन्दी के कवियों से इकट्ठा करना और फिर अर्थ की व्यवस्था करना भी कोई आसान काम नहीं है। सामूहिक योजना से जो धन इकट्ठा हुआ वह निहायत नाकाफ़ी रहा और चूँकि पुस्तक को प्रेस में ही नहीं छोड़ देना था, कुछ पैसा उधार लेकर भी लगाया गया। कुछ सज्जन यह भी कह सकते हैं कि बहुत लोगों की एक-एक रचना ही छाप कर उन्हें निबटाने की कोशिश की है, लेकिन यह कहना असंगत होगा। हमारा उद्देश्य रचनाओं की संख्या नहीं, रचनाओं की उत्तमता रहा है। इसी दृष्टिकोण से अनेक रचनाओं में कुछ अनिवार्य हेर-फेर भी करना पड़ा है।

उन सब सज्जनों के प्रति जिनसे हमें सहयोग रूप में मात्र धन प्राप्त हुआ है, हम अपना आभार प्रकट करते हैं। साथ ही जहाँ कुछ बन्धुओं ने संग्रह छापने में रुकावटें और विलम्ब पैदा करने के अनेक

यत्न किये हैं वहाँ दूसरे जिन बुजुर्गों और नए लेखकों ने परामर्श और सहयोग दिया है, उनके हम कृतज्ञ हैं। श्री बलवीर सहाय और विद्रोही जी ने परिचय-संकलन आदि में हमें काफ़ी सहयोग दिया है। विशेष रूप से हम श्री वेदव्रत विद्यालङ्कार के कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने प्रेस में पुस्तक को कम खर्च से अच्छा-से-अच्छा छापने में हमारा हाथ बटाया है।

गोपालकृष्ण कौल
रामावतार त्यागी

अनुक्रम

			पृष्ठ
१.	बालकृष्ण शर्मा नवीन	...	१
२.	उदयशंकर भट्ट	...	७
३.	अज्ञेय	...	१३
४.	नगेन्द्र	...	१६
५.	गिरिजाकुमार माथुर	...	२०
६.	प्रभाकर माचवे	...	२७
७.	देवेन्द्र सत्यार्थी	...	३०
८.	गोपालप्रसाद व्यास	...	३५
९.	शम्भुनाथ शेष	...	४०
१०.	देवराज दिनेश	...	४५
११.	चिरंजीत	...	५२
१२.	रामावतार त्यागी	...	५५
१३.	गोपाल कृष्ण कौल	...	६१
१४.	बाबूराम पालीवाल	...	६७
१५.	शान्ति सिंहल	...	७१
१६.	क्षेमचन्द्र सुमन	...	७५
१७.	रामानन्द दोषी	...	७९
१८.	विनोद शर्मा	...	८३
१९.	प्रयागनारायण त्रिपाठी	...	८५
२०.	इन्द्रप्रताप तिवारी	...	८९
२१.	जगदीश विद्रोही	...	९३
२२.	ईशकुमार ईश	...	९६

२३. बलवीर सहाय ... ६८
२४. पुष्पलता माधवी ... ६६
२५. गोपीनाथ 'व्यथित' ... १०२
२६. रामकृष्ण 'भारती' ... १०३
२७. उदयभानु 'हंस' ... १०४
२८. शारदेन्दु ... १०६
२६. हरिश्चन्द्र वर्मा ... १०७
३०. हेमेन्द्र १०८
३१. सत्यदेव शर्मा ... १११
३२. भगवद्दत्त 'शिशु' ... ११२
३३. जगदीश 'सम्राट्' ... ११३
३४. रघुवीर सहाय ... ११३
३५. करुणेश ... ११५
३६. निर्मला माथुर ... ११६
३७. रामेश्वरी शर्मा ... ११७
३८. शांता गट्टानी ... ११८
३६. सुधा खरे ... ११६
४०. स्वर्णलता शर्मा ... १२०
४१. मोहनी गौतम ... १२१
४२. भगवती देवी 'विह्वला' ... १२२
४३. विश्वेश्वर प्रसाद 'मुनव्वर' ... १२३
४४. विमलकुमार जैन ... १२४
४५. विजयचन्द्र जैन ... १२५
४६. जयदेव शर्मा ... १२६
४७. अजीत कुमार विन्दल ... १२७
४८. मनमोहन गौतम ... १२८

४६. प्रेम देहलवी ... १२८
५०. श्रीकृष्ण अग्रवाल ... १२६
५१. जगदीश 'बेचैन' ... १३०
५२. ईश्वरचन्द 'विकल' ... १३१
५३. प्राणनाथ 'कालरा' ... १३२
५४. जवाहर चौधरी ... १३४
५५. वीरेन्द्र कुमार ... १३५
५६. नरेन्द्रपाल 'नरेश' ... १३६
५७. सोमदत्त गौड़ ... १३७
५८. मदनलाल भाटिया ... १३८
५६. किशोर ... १३६
६०. रमेश तरुण ... १४०
६१. भ्रमर ... १४३

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

हिय में सदा चाँदनी छाई

कुछ धूमिल-सी, कुछ उज्ज्वल-सी,
झिलमिल शिशिर-चाँदनी छाई,
मेरे कारा के आँगन में,
उमड़ पड़ी यह अमित जुन्हाई।

यह आँगन है उस भिक्षुक-सा,
जो पा जाए अति अमाप धन !
उस याचक सा जो धन पाकर,
हो जाए उद्भ्रान्त, शून्य-मन ! !
उसी तरह सकुचा-सकुचा सा,
आज हो रहा है यह आँगन;
कहाँ धरे यह विपुल सम्पदा,
फैली जिसकी अमित निकाई ?
उमड़ पड़ी यह शिशिर-जुन्हाई।

अरे, आज चाँदी बरसी है,
मेरे इस सूने आँगन में,

जिससे चमक आ गई है इन—
मेरे भूलुण्ठित कण-कण में,
उठ आई है एक पुलक मृदु,
मुझ बन्दी के भी तन-मन में,
भावी की स्वप्निल फुहियों में,
मेरी भी कल्पना नहाई।
उमड़ पड़ी यह अमित जुन्हाई।

मैं हूँ बन्द सात तालों में,
किन्तु, मुक्त है चन्द्र गगन में,
मुक्ति बह रही है क्षण-क्षण,
इस मन्द प्रवाहित शिशिर-व्यजन में।
और, कहो, मैंने कब मानी,
बन्धन-सीमा अपने मन में ?
जग-जन-गण का मुक्ति-सँदेसा,
ले आई चन्द्रिका-लुनाई।
उमड़ पड़ी यह शिशिर-जुन्हाई।

मैं निज काल-कोठरी में हूँ,
औ' चाँदनी खिली है बाहर,
इधर अन्धेरा फैल रहा है,
फैला उधर प्रकाश अमाहर,

क्यों मानूँ कि ध्वांत अविजित है,
जब है विस्तृत गगन-उजागर ?
लो, मेरी खपरैलों से भी,
एक किरण हँसती छन आई ! ! !
उमड़ पड़ी यह शिशिर-जुन्हाई ।

मास, वर्ष की गिनती क्यों हो,
वहाँ जहाँ मन्वन्तर जूझें ?
युग-परिवर्तन करने वाले,
जीवन-वर्षों को क्यों बूझें ?
हम विद्रोही ! ! कहो, हमें क्यों,
अपने मग के कंटक सूझें ?
हमको चलना है ! ! ! हमको क्या?
हो अँधियारी या कि जुन्हाई ?
हिय में सदा चाँदनी छाई ।

मरुथल का मृग

मैं तो हूँ मरुथल का मृग, प्रिय,
हूँ ना जाने कितना प्यासा,
मैंने अपने जीवन-वन में,
बोलो, कब जाना चौमासा ?

झिल-मिल तरल तरङ्गित जल-थल,
झलक रहा है दिशि-दिशि सारा;
ज्यों-ज्यों उस दिशि धाया,
त्यों-त्यों दूर हटा जल-कूल-किनारा;
निज मरीचिका के भ्रम में,
मैं दौड़ फिरा हूँ मारा-मारा !
अपने लिये न जाने क्या हूँ,
पर, हूँ जग के लिये तमासा !!

मैं तो हूँ मरुथल का मृग,
प्रिय, हूँ ना जाने कितना प्यासा !

यों ही दौड़-दौड़ कर तोड़े,
कितनी बार प्राण ये अपने;
ना जाने कितने युग से मैं,
देख रहा हूँ वारिद-सपने;
किन्तु निहारी नित मरीचिका,
मम मृग-नयनों की लप-झपने,
पर्ण रहित कब हुआ, कहो तो,
मेरे वन का अर्क, जवासा ?

मैं तो हूँ मरुथल का मृग, प्रिय,
हूँ ना जाने कितना प्यासा !

दौड़ रहा हूँ मरुथल में मैं,
झिझका-सा अटका-भटका-सा;
यह जीवन भी क्या जायेगा
जल बिन? है अब यह खटका-सा;
देखो तो, प्रिय, आ पहुँचा है
यह क्षण जीवन-सङ्कट का-सा;
नद बन बहो, कि घन बन बरसो!!
अब तो मेटो प्राण-पिपासा !!!

मैं तो हूँ मरुथल का मृग, प्रिय,
हूँ ना जाने कितना प्यासा।

मेरी नीर भरी बदली, तुम हो
क्यों इतनी दूर गगन में ?
तड़प रहा है यह आकुल हिय,
तव सनेह-घन-वारि लगन में;
मेरी रसभीनी श्यामा, तुम,
बरसो मम मन-घन-आँगन में;
सूखा कण्ठ, ओठ पर पपड़ी,
अन्तर तर है पका-पका-सा;

में तो हूँ मरुथल का मृग, प्रिय,
हूँ ना जाने कितना प्यासा !

सृजन-वीणा

प्रियतम, मम रोम-रोम, रन्ध्र-रन्ध्र स्वनित आज,
मेरी चेतन-वीणा है गुञ्जित, क्वणित आज।

सहसा मिल गए आज मेरे सब तार—तार,
गूँजी झंकार मधुर, उमँगी मधु-गान-धार,
आज पूर्ण हुआ, प्राण, जीवन का स्वर—सिंगार,
आरोहण, अवरोहण, श्रुति, लय, सब ध्वनित आज
रोम-रोम स्वनित आज।

वीणा के ककुभ बने ये वर्त्तुल देश—काल,
मेरा अस्तित्व बना इसका रस मय प्रवाल,
प्रति क्षण हिय का स्पन्दन देता है नियत ताल,
अनिल,अनल,जल, थल वन झलक उठे स्वर-समाज,
रोम-रोम स्वनित आज।

गूँजी चेतन - वीणा, प्रकृति - नटी नाच उठी;
सूने दिक्—काल झुके; सिरजन की आंच उठी,
अपनी इतिहास-कथा सकल सृष्टि बाँच उठी,
अणु-अणु में, किरणों में रहे मधुर स्वर विराज
रोम-रोम स्वनित आज।

उदयशंकर भट्ट

यह शरद्-हास

यह शरद् का हास उज्ज्वल स्फटिक राका स्रोत,
कण किरण स्रोतस्विनी से मधुर ओतप्रोत,
खिल रहा आकाश में
आकाश में, उल्लास भर पावन धरा पर
प्राण-सा मधुमास के मधुहास-सा
मन्द मादक चरण धरता
हरित भू पर,
शष्प ऊपर,
तरुलता तृण सरित सागर नदी निर्झर की
पवन को चूमता
आ रहा नभ से उतर कर
पवन के रथ,
सुरति विश्लथ,
यह शरद् का हास।

यह शरद् का हास
देखते जिसको सितारे

मौन सारे,
खोल दृग पट
अपल स्वप्निल निशा की लट गूँथते,
सुरतिभीनी कामनी की स्मय लहर से झूमते,
कुमुदिनी के प्रणय जलते स्वप्न से
अधखुली शेफालिका की कथा में संलग्न से
थिरकती कल्हारिणी के श्वास पर
संजोते एकान्त में मधुमास स्वर
तरंगित सरि की लहर कण चूमते
थिरकते आनन्द मद में झूमते,
वन नदी तट झाड़ियों में चुप
रेंगता सित सर्प सा मद घुप,
जागता है जागरण की साँस का सौरभ
और "चुरमुर" म्लान दल की भग्न सारी
आस के गत रव,
जैसे बरसता हो मोतियों का चून
कास का निस्पन्द या सित खून
दूध से न्हाई धरा का हास
दूर कोनों तक दिशा के छोर छूकर
उभरता पल-पल शरद् का हास
यह शरद् का हास ?

नाचती है रश्मि उर्वशि,
मौन वीणा की लहर उत्ताल भर
गमक में उभरे स्वरों के साथ
मौन वातावरण में आपात
चंचल लहकती सुरभित दिशायें,
रागिनी विह्वल अधर
हृदय के अन्तःकुहर
सुन रहे मानों अधर के गान
नृत्य विलसित कामना उत्तान
बाँधते छवि प्राण में संसार को
उड़ रहे हैं स्वप्न के दृग खोल
हृदय में अन्तः प्रसृत मद घोल,
खोज पाता हूँ न मैं निज को कहाँ हूँ कौन ?
मैं निपट आश्वस्त निस्वन मौन
देखता हूँ सब नया सव ओर
सत्य के सम शुभ्र जग को और प्राण विभोर
स्नात मद
अभिषिक्त पद, गद्गद् विहग जलचर अचर
जन जीव सब,
अभ्रक बिखरता सा देखता आनन्द कण
मद कादम्ब कण कण में,

धरा पर नभ में,
विश्व में सब में,
खोलता पट प्रकृति के नव रूप राका व्यास
यह शरद् का हास ।

अभी दूर मंजिल

थके पाँव विश्वास के साधना के
अभी दूर मंजिल तिमिर भी गहनतम ।

रुकी क्यों कहानी कही जा रही थी
लिखी जा रही पृष्ठ पर साधुता के ?
रुका क्यों चला कारवाँ चीह्नता पथ
सहारे सहारे नई बन्धुता के ?
गगन से उठे मेघ बरसे बिना ही
कहीं जा छिपे वे धरा प्राण-दानी ।
अरे, मौत से भी हुई आज भारी
हमारी नई जिन्दगी की कहानी ।
व्यथा झाँकती आँख से हर किसी के
निशा के तिमिर-चिह्न दिनभाल पर हैं ।
जवानी परेशानियों से झुकी है कि
शिशु की हंसी मृत्यु के ताल पर है ।

सिसक है रहा शिव कि सौंदर्य विह्वल
हुआ जा रहा सत्य स्वातंत्र्य-अक्षम ।
थके पाँव विश्वास के साधना के
अभी दूर मंजिल तिमिर है गहनतम ।

सभी ओर छल की कपट कूटनीतिक
ग्रहण ग्रास की साँपिनी विश्वछाया ।
पिये जा रही प्राण का मन्द कम्पन
निगलती चली जा रही बुद्धि काया ।
कि सौंदर्य निर्लज्ज, आदर अनादृत,
अहं दर्प में भीगता जा रहा है ।
अमर्याद यौवन अमिट भूख का स्वर
हृदय प्राण को लीलता जा रहा है ।
सभी डूबता जा रहा ज्ञान जन का
कला शिव सृजन राजनीतिक भंवर में
सभी डूबता जा रहा शुद्ध चिन्तन
अनय के विनय के कपट कूट-सर में

सभी ओर से सत्य के आवरण में—
कहा जा रहा शान्ति के दूत हैं हम ।
थके पाँव विश्वास के साधना के
अभी दूर मंजिल तिमिर भी गहनतम ।

उसे बोलने दो कि जो जी रहा
चाहता और जीना, उसे बोलने दो।
उसे बोलने दो कि साहित्य द्वारा
जगाता जगत को उसे बोलने दो।
सुनो, सत्य का, ज्ञान का, आत्मा का
नया स्वर, सुनो खंडहरों से उठा है।
जहाँ भूख से प्यास से जिन्दगी की
नई आस लेकर मनुज आ जुटा है।
पुराना बुरा है न अच्छा नया सब
समझ से अगर खोजने हम चलें तो।
पुरानी मही पर नये स्वर्ग का हम
नया प्राण निर्माण करने चलें तो।

नरक से उठेगा नया स्वर्ग जय का
मनुज की विजय का करें तो पराक्रम।
थके पाँव विश्वास के साधना के
अभी दूर मंजिल तिमिर भी गहनतम।

●

'अज्ञेय'

तीन कविताएँ

१

ऊपर फैला है आकाश, भरा तारों से
भारमुक्त से तिर जाते हैं
पंछी
डैने बिना हिलाये
जी होता है मैं सहसा गा उठूँ
उमगते
स्वर जो कभी नहीं भीतर से फूटे
कभी नहीं जो मैंने—
कहीं किसी ने—गाये।

किन्तु अधूरा है आकाश
हवा के स्वर बन्दी हैं
मैं धरती से बँधा हुआ हूँ—
हूँ ही नहीं—प्रतिध्वनि भर हूँ,
जब तक

नहीं उमगते तुम स्वर में, मेरे प्राण-स्वर,
तारों में स्थिर मेरे तारे,
जब तक नहीं तुम्हारी लम्बायित परछाहीं
कर जाती आकाश अधूरा
पूरा ।

भारमुक्त
ओ मेरी संज्ञा में तिर जाने वाले पंछी,
देख रहा हूँ तुम्हें मुग्ध
मैं ।

यह लो :
लाली में से उभर चम्पई
उठा दूज का चाँद कँटीला ।

२

निमिष-भर को सो गया था प्यार का प्रहरो
उस निमिष में कट गयी है
कठिन तप की शिंजिनी दुहरी
सत्य का वह सनसनाता तीर
जा पहुँचा हृदय के पार—
खोल दो सब वंचना के
दुर्ग के ये रुद्ध सिंहद्वार !

एक अन्तिम निमिष भर के
ही लिए कट जाय माया-पाश—
एक क्षण-भर वक्ष के सूने
कुहर को झनझना कर
चला जावे झुलस कर भी
तप्त अन्तिम मुक्ति का प्रश्वास—
कब तलक यह आत्म-संचय की
कृपणता ! यह घुमड़ता त्रास !
दान कर दो खुले कर से खुले उर से
होम कर दो स्वयं को समिधा बना कर !
शून्य होगा, तिमिरमय भी, तुम यही
जानो कि अनुक्षण मुक्त है आकाश !

३

फूल को प्यार करो
पर झरे तो झर जाने दो ।
जीवन का रस लो : देह-मन-आत्मा की रसना से
पर जो मरे उसे मर जाने दो ।
जरा है भुजा तितीर्षी की : मत बनो बाधा
जिजीविषु को तर जाने दो ।
आसक्ति नहीं, आनन्द है सम्पूर्ण व्यक्ति की
अभिव्यक्ति :
मरूँ मैं, किन्तु मुझे घोषित यह कर जाने दो ।

डा० नगेन्द्र

रेखा-चित्र

यह अति विस्तृत प्लैटफार्म जिसकी चौड़ी छाती पर,
भीम-काय एन्जिन, झकझक करतीं गाड़ियाँ भयंकर।
अगणित संकल्पों से जिनके आलोड़ित उर-अन्तर,
दिशि-दिशि गामी यात्री जन का उमड़ रहा है सागर।
यह व्यवसायी हानि-लाभ गणना में रत अन्तर्मुख,
किसी नवीन सफल प्रण की ले रहा कल्पना का सुख।
वह अधिकारी उच्च, सम्हाले गरिमा अपने तन की,
शंकर के कार्टूनों से भर रहा रिक्तता मन की।
उधर, दूर कोने में बैठे नव दम्पति रंगराते,
मिलन-अधीर मदिर नयनों में नव मधु-पर्व मनाते।

सीटी बजी और रेंगी धीमी गाड़ी पटरी पर,
जगे विदा के दृश्य व्यथित खिड़की के बाहर-भीतर।
स्वाभाविक-कृत्रिम कर-पीड़न शतशत दिए दिखाई,
हिले रुमाल, अधर फड़के, आँखें गीली हो आई।
मुझको यह सब लगा अनीप्सित शिष्टाचार-प्रदर्शन,
मेरी बुद्धि विजय पर अपनी हँसी सहज मन ही मन।

इतने ही में भीड़ चीर कर वह तेरी परछाईं,
मुझे विदा देने को रीती दृष्टि समेटे आई।
मधु-फूलों का हास सिमट बन गया करुण-स्मिति रेखा,
मीलों का व्यवधान पार कर तुमको सम्मुख देखा।
सहम गया मेरा विवेक उस द्रवित मूर्ति के आगे,
मैंने आँखें मूँद तुम्हारे चरण छुए अनुरागे।
तार्किक बुद्धि, विवेक, आत्मसंयम जीवन का बल है,
पर इनसे भी अधिक प्राण की ममता कहीं प्रबल है।

ओ पुरुष के गर्व !

ओ, पुरुष के गर्व !
तूने नाप डाला दो पगों से रे,
गगन निस्सीम का विस्तार !
तूने चीर डाला नोक से नख की,
जलधि का गर्भ गहन अपार !
तूने तोड़ डाला चाप से उत्तुँग
पर्वत-शिखर का अभिमान !
तूने झेल हाथों पर लिया,
गुर्वी धरा का अतुल भार, निदान।
क्या तुझे बन्दी बना लेंगे भुजा के पाश ?
कम्पित बाहुओं के पाश ?

ओ, पुरुष के ज्ञान !

तेरी प्रखरता ने हृदय अणु-
परमाणु का भी सहज डाला चीर,
तेरी सूक्ष्मता ने भेद डाले
सत्य के शत-शत रहस्य गँभीर,
तेरी गहनता में काल-सीमा के
सभी प्रस्तार शांत, निमग्न,
तेरी ज्योति में वे ब्रह्म, माया,
जीव के सब तत्त्व होते नग्न !
क्या भुला लेगी तुझे वह मोहमय मुसकान ?
चंचल मोहमय मुसकान ?

ओ, पुरुष की भक्ति !

तूने कर दिया चिर शून्य में
नव प्राण का संचार,
तूने दान कर दी कल्पना को,
एक धूमिल कल्पना को, व्यक्ति औ' आकार,
तेरी भावना ने कर दिया
प्रत्येक कण भगवान !
तेरी उष्णता से गल उठा
चिर - शापमय पाषाण ।
क्या बहा देगी तुझे लघु आँसुओं की धार ?
फीके आँसुओं की धार ?

विदा की बेला

मैंने चूम लिए वे लोचन !

रात-दिवस, घण्टे-घड़ियों को,
तोड़ काल की दृढ़ कड़ियों को,
आई क्रूर विदा की बेला,
रौंद कामनाओं का मृदु तन ।
मैंने चूम लिए वे लोचन ।

जाओगे, तो फिर जाओ ही,
मुझे भूल जाना - पर, देखो,
मुझे भूलना मत निर्मोही !
ढुलक पड़े दो आँसू के कन ।
मैंने चूम लिए वे लोचन ।

विरह-तमिस्रा के सागर में,
थके - थाह लेते - वह जाते ।
मेरे वाष्प-मलिन नयनों में
आश्रय व्यर्थ खोजने आते ।
लेकर भार अमित पीड़ा का,
मूक अचंचल पलक उठाये,
'फिर न मिलोगे क्या परदेशी ?'
पूछ रही थी धूमिल चितवन ।
मैंने चूम लिये वे लोचन ! !

गिरिजाकुमार माथुर

आग और फूल

निकलती ही जा रहीं घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की
ग्रीष्म के उस फूल सी
जिसकी नई केसर हवा ने सोख ली
वह आग की पीली शिखा
नीले धुएँ की धारियाँ घेरे रहीं
जिसके प्रथम आलोक को
सीमान्त में जिसके रहे
पर्वत अन्धेरे के खड़े
सुनसान की आवाज़
आती ही रही नेपथ्य से
जो निगल जाना चाहती थी
ज़िन्दगी के गीत को ।

ज्वालामुखी के द्वीप सा
संघर्ष का यह लोक है
हिलती हुई धरती यहाँ

हिलते हुए आधार हैं
कमज़ोर मिट्टी की जड़ें
जमकर न जम पातीं कभी
उठते बगूले ज़ुल्म के दुःख के सदा
हर लहर पर आते नए भूचाल हैं
उजड़ा पड़ा यह द्वीप बिकनी की तरह
फिर फिर सदा
संघर्ष का अणुबम यहाँ जाँचा गया ।

यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त मन्थन-काल है
संक्रान्ति की घड़ियाँ बनी हैं शृंखला
बन्दी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं
है फेन विष का फैलता ही जा रहा
अब डूबता अन्तिम ग्रहण की छाँह में
आलोकहत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसका कि पृथ्वी नाम है ।
बस इसलिए वह उजड़ी धरा
वह फूल सूखा ही खिला
केसर बिना

वह आग की पीली शिखा
धुन्धली रही मन्दी रही
उज्ज्वल न पूरी परिधि को जो कर सकी
वह भस्म कर पाई नहीं
नीले धुएँ को व्योम से ।

वह भूमि किन्तु न मिट सकी
आगत फसल की राह में
वह फूल मुरझाया नहीं
रितु रंग लाने के अमिट विश्वास में
वह आग की पीली शिखा
उठती रही, जलती रही
आलोक-कन तम से बचा
वह अग्नि-बीजों को सतत बोती रही
फिर से नया सूरज उगाने के लिए !

सिन्धु तट की रात

कार्तिक की पंचमी
है पंचमी की चाँदनी
पंचमी की चाँदनी में
याद आती है

चाँदनी हल्के कुहर के
साथ आती है।

यह अधूरे चाँद का
ऐपन रँगा मंडल
गौर माथे पर गिरे,
उड़ चंपई कुन्तल
हो रहीं ठण्डी हथेली
छू अलक दल को
सिन्धु में डूबी हवाएँ
हो गईं शीतल

साँझ की सुधि में
हँसी सी आगई होगी
बर्फ की पहिली रुई भी
छा गई होगी
बाँह पर उड़ता गले का
रेशमी रुमाल
द्वीप पर आकर लहर
छितरा गई होगी

चाँद के सँग दूर की
वह रात आती है

चाँदनी हल्के कुहर के
साथ आती है।

भीगता रस,
भीगती मुसकान
किन्तु सुधि होती अधिक रसवान
और मोती की मधुर पहिचान
भी,
मोती गए के बाद आती है।
पंचमी की चाँदनी में
याद आती है।

जीत की रात

आज जीत की रात
पहरुए, सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना।

प्रथम चरण है नए स्वर्ग का
है मंज़िल का छोर
इस जन-मंथन से उठ आई
पहिली रत्न-हिलोर

अभी शेष है पूरी होना
जीवन मुक्ता-डोर
क्योंकि नहीं मिट पाई दु:ख की
विगत साँवली कोर

ले युग की पतवार
बने अम्बुधि महान रहना !

विषम शृंखलाएँ टूटी हैं
खुली समस्त दिशाएँ
आज प्रभंजन बनकर चलतीं
युग-बन्दिनी हवाएँ
प्रश्न-चिन्ह बन खड़ी होगईं
यह सिमटी सीमाएँ
आज पुराने सिंहासन की
टूट रहीं प्रतिमाएँ

उठता है तूफान
इंदु तुम दीप्तमान रहना

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया लेकिन उसकी

छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमज़ोर हमारा घर है
किन्तु आरही नई ज़िन्दगी
यह विश्वास अमर है

जन गंगा में ज्वार
लहर तुम, प्रवहमान रहना !

●

प्रभाकर माचवे

एक सानेट

जब गलत समझा मुझे दुनिया ने तब
तुमने ही मुझ से कहा था—'तुम सही !'
'कौन समझेगा तुम्हें, (सब अन्ध हैं),
राह दुनिया से अलग तुमने गही ।'

आज कितने दिनों बाद मिलीं मुझे
कह चलो जो रह गई थी अनकही ।
यह कि हम-तुम ही नहीं वैसे रहे ?
हैं वही धरती, हवा, छाया, जुही ?

है मुझे शिकवा जरा इस बात का
हो रही थी बात, वह आधी रही,
और उसने भेद ऐसा कर दिया :
आसमाँ वैसा नहीं वैसी मही ।

बह रही नदिया किनारे लाँघकर,
याद तेरी आज आँसू बन बही ।

ठीक दिन के १२ बजे

सूरज है ठीक सर के ऊपर
साया भी सिमटी है डर के भू पर
पुतलीघर.......घंटाभर छुट्टी का बजा भोंपू......
जल्दी से खाएंगे...जुटेंगे पुनः साँचे पर.......
सभ्यता हमारी पली इसी वर्ग के खूँ पर !

फुरसत नहीं हाय हमें पीने से–
हमको क्या मतलब है जीने से
जनमे हैं इसी से बस साँसों को ढोते हैं
हमको क्या करना है किसी के पसीने से !

जानना और करना

जानता हूँ एक बात
यह जुन्हाई की रात
है जुदाई की रात

चाँद की बारात है तारों का जनाज़ा
याद की मलाई उभरी है तरोताज़ा
रेंक रहा बाजा–'रे आजा मोरे राजा !'
ज़िन्दगी में मौत का,
थोड़ों में बहुत का, आधा है साझा !

नयी-नयी पौध का
होगा आत्म-घात
होगी तभी प्रात
जानता हूँ यही बात

जानता हूँ फिर भी मैं कहाँ मानता हूँ
अपनी व्यथा में हँसी-खुशी सानता हूँ
विचारों में द्रुत तेज़, गति-मन्दाक्रान्ता हूँ
डार-डार पात-पात
दो-दो कटे हुए हाथ
चाँदनी का गौर गात
ऐ चकोर ! मार लात
जानता हूँ एक बात
रात नहीं रात सदा
बात नहीं बात !

●

देवेन्द्र सत्यार्थी

मित्र, तुम सो गये ?

जुहू की चाँदनी मछुए का जाल रे
मछुए की रागिनी उदासिनी—
बच के चलो, मछलियो !
मिल के चलो, मछलियो !
मिल के फंसो, मछलियो !

आँसू-भरी डगर पर
फिसलती हैं मछलियाँ
यात्रा का अन्त कहाँ ?

सुदूर काश्मीर की शरद् ऋतु—
हम से मिले तुम, जैसे युग से मिले युग
अर्चना-नृत्य की खुशी में उठीं झूम ग्राम-वीथियाँ
याद है वह केसर का गीत ?
"पाम्पुर के पथ पर गये मोरे बलमा
केसर के फूलों ने डालीं गलबहियाँ,
तू वहाँ, मैं यहाँ,
सुन मेरी पुकार, सुन मेरी पुकार......."

गीत की गली में आज किसका भाग्य खो गया ?
लाज-लजी दुलहन का स्नेह-दीप सो गया ?
जुहू की लहरों की थाप अभिशापिनी
मछुए की रागिनी उदासिनी ।

चाँदनी सुहासिनी थिरक रही स्वरों के आरोह पर
मुखरित हैं गीतों की शत्-शत् समाधियाँ
ढोल कहे : मेरी परिक्रमा हुई पूरी
वंशी कहे : मिट गई, मिट गई सब दूरी
मित्र, तुम सो गये ? सुनो एक गोंड गीत—
'मंडला बाजार में गुड़ नाहीं मिले रे
करमा गवैया का सुर नाहीं मिले रे ।'
धीरे-धीरे बात बतला रही है चाँदनी
लहरों का शंखनाद
तैर रहा दूर-दूर
मछुए को रागिनी है आज क्यों उदासिनी ?

गीत की गली में आज आई नृत्य-वेला
गीत का है अन्त कहाँ ? नृत्य का है अन्त कहाँ ?
मछुए की रागिनी का अन्त कहाँ ?
मछुए के जाल पर भूख की कहानियाँ
मछुआ भी मछली, मछली भी मछुआ,

कौन कहे कौन सुने, कौन रोये कौन हँसे ?
मित्र, तुम सो गये ? सुनो एक और गीत—
'मछुए के पुत्र हुआ सिर पै धरे जाल रे !
रो रही मछरिया हाल बेहाल रे—
मछुए के पुत्र हुआ सिर पै धरे जाल रे......'

मन की दहलीज़ पर हँस रही है चाँदनी,
थिरक रही चाँदनी, खटक रही चाँदनी,
भीतर भी काँटा, बाहर भी काँटा !
चाँद भी काँटा, चाँदनी भी काँटा !
मित्र, तुम सो गये ? सुनो एक और गीत—
मछुए के जाल में मछलियों का मेला !
मछुआ अकेला, पैसा न धेला !
मछुए की आँख में भूख भी उदासी भी,
मछुए की रागिनी भूखी भी, प्यासी भी !

मित्र, तुम सो गये ?
मछुआ हो चाहे अभिनेता चलचित्र का
चाहे बनजारा संगीत-गीत-चित्र का
अभिनय है, अभिनय है !
दर्द-वेदना की बात, चाँद-चाँदनी की रात

अभिनय है, अभिनय है !
बच के चलो, मछलियो !
मिल के चलो, मछलियो !
मिल के फँसो, मछलियो !
जुहू की चाँदनी मछुए का जाल रे
मछुए की रागिनी उदासिनी ।

गुलमुहर के फूल

गुलमुहर के फूल भी क्या फूल हैं !
चार दिन के मेहमान
आखिरी झाँकी भी हो उठती है
कितनी मूल्यवान् !
काश ! कोई इन्हीं फूलों से
सजा दे आज वन्दनवार
पर न जाने मन कह रहा था आज बारम्बार—
गुलमुहर के फूल ज्यादा शोख़ हैं, नादान !
सनसनाते तीर सा आकर लगा
गुलमुहर के हृदय तल पर व्यंग है तीखा नुकीला
क्या बुरा है रंग हो यदि शोख़ भी ?
रंग आखिर रंग है ! हाँ, रंग है वरदान !

गुलमुहर यदि हो उठा नाराज़
और खा ली शपथ उसने—मन की आशाएँ उम
मन के भीतर ही खिलाऊँ सदा !
इस सड़क की फिर कहाँ रह जायगी यह शान
इतनी आजादी तो होनी चाहिए हर फूल को
रंग दिल की आग का भड़का सके,
गुलमुहर के फूल भी क्या फूल हैं
चार दिन के मेहमान !

•

गोपालप्रसाद 'व्यास'

भई, भाषण दो ! भई, भाषण दो !!

यदि दर्द पेट में होता हो,
या नन्हा-मुन्ना रोता हो,
या आँखों की बीमारी हो,
अथवा चढ़ रही तिजारी हो,
तो नहीं डाक्टरों पर जाओ,
वैद्यों से अरे न टकराओ;
है सब रोगों की एक दवा–
भई, भाषण दो ! भई, भाषण दो ! !

हर गली, सड़क, चौराहे पर
भाषण की गंगा बहती है,
हर समझदार नर-नारी के
कानों में कहती रहती है—
मत पुण्य करो, मत पाप करो,
मत राम-नाम का जाप करो,
कम-से-कम दिन में एक बार–
भई, भाषण दो ! भई, भाषण दो ! !

भाषण देने से, सुनो, स्वयं
नदियों पर पुल बँध जाएँगे,
बँध जाएँगे सैकड़ों बाँध,
लाखों ऊसर उग आएँगे।
तुम शब्द-शक्ति के इस महत्त्व को
मत विद्युत से कम समझो,
भाषण का बटन दबाते ही
बादल पानी बरसाएँगे।

इसलिए न मैला चाम करो,
दिन-भर प्यारे, आराम करो !
संध्या को भोजन से पहले,
छोड़ो अपने कपड़े मैले,
तन को सँवार, मनको उभार,
कुछ नये शब्द लेकर उधार,
प्रत्येक विषय पर आँख मूँद–
भई, भाषण दो! भई, भाषण दो!!

अब मूर्ख बनो, मतिमन्द बनो !

बन चुके बहुत तुम ज्ञानचन्द,
बुद्धिप्रकाश विद्यासागर,

पर अब कुछ दिन को कहा मान
तुम लाला मूसलचन्द बनो !
अब मूर्ख बनो० ।

यदि मूर्ख बनोगे तो प्यारे,
दुनिया में आदर पाओगे ।
जी, छोड़ो बात मनुष्यों की,
देवों के प्रिय कहलाओगे ।
लक्ष्मीजी भी होंगी प्रसन्न,
गृहलक्ष्मी दिल से चाहेंगीं ।
हर सभा और सम्मेलन के
अध्यक्ष बनाए जाओगे !
पढ़ने - लिखने में क्या रक्खा,
आँखें खराब हो जाती हैं ।
चिन्तन का चक्कर ऐसा है
चेतना दगा दे जाती है ।
इसलिए पढ़ो मत, सोचो मत,
बोलो मत, आँखें खोलो मत,
तुम पूरे स्थितप्रज्ञ बनो,
सच्चे सम्पूर्णानन्द बनो ।
अब मूर्ख बनो० ।

मत पड़ो कला के चक्कर में,
नाहक ही समय गँवाओगे।
नाहक सिगरेटें फूँकोगे,
नाहक ही बाल बढ़ाओगे।
पर मूर्ख रहे तो आस - पास
छत्तीस कलाएँ नाचेंगीं,
तुम एक कला के बिना कहे ही
छः–छः अर्थ बताओगे !
सुलझी बातों को नाहक ही
तुम क्यों उलझाया करते हो?
उलझी बातों को अमाँ व्यर्थ में
कला बताया करते हो !
ये कला-बला-तबला सारंगी
भरे पेट के सौदे हैं,
इसलिए प्रथमतः चरो,
पुनः विचारो, पूरे निर्द्वन्द्व बनो,
अब मूर्ख बनो०।

हे नेताओ, यह याद रखो,
दुनिया मूर्खों पर कायम है।
मूर्खों की वोटें ज्यादा हैं,
मूर्खों के चन्दे में दम है।

हे प्रजातंत्र के परिपोषक,
बहुमत का मान करे जाम्रो ।
जबतक हम मूरख जिन्दा हैं
तबतक तुमको किसका गम है?
इसलिए भाइयो, एक बार
फिर बुद्धूपन की जय बोलो।
बुद्धी के बन्द किवाड़ करो,
अब मूरखता के पट खोलो ।
यह विश्व-शांति का मूल मन्त्र
यह रामराज्य की प्रथम शर्त,
अपना दिमाग गिरवी रखकर
खाम्रो, खेलो, स्वच्छन्द बनो।
अब मूर्ख बनो० ।

शम्भूनाथ 'शेष'

बरसात की रातें

ज्योत्स्ना में नहा उठती है बरसात की रात।
अनुराग में है भीगती जलजात की रात !
यौवन के मदिर नयन का पाकर संकेत !
बाँहों में सिमट आती है अहिवात की रात !

अधरों से इधर बात है, तुम हो, मैं हूँ !
अनुराग की बरसात है, तुम हो, मैं हूँ !
बदली में छिपा जाता है जानें क्यों चाँद,
यह साँवली सी रात है, तुम हो, मैं हूँ !

प्राणों में प्रणय-दीप सँजोने के लिये !
अनुराग से उर-दाह को धोने के लिये !
आकाश में मेघों ने क्या छेड़ा है मल्हार !
मुग्धाओं के तन-मन को भिगोने के लिये !

संकोच का आवरण हटे मन पर से !
जब आप लुटाता हो तो जी क्यों तरसे !
जीवन का यह अमृत है, पिला भी, पी भी,
सावन का महीना है छमा-छम बरसे !

अंगूर का निथरा हुआ पानी, पी जा !
संसार की मत छेड़ कहानी, पी जा !
भव-शूल से जो त्राण तुझे पाना हो,
तो फूल की रंगीन जवानी, पी जा !

मानस का कलुष धुलने में अब देर न हो !
सोने में समय तुलने में अब देर न हो !
क्या झूम के घिर आई है सावन की घटा !
मधुशाला के पट खुलने में अब देर न हो !

चाँद मुझ से दूर, मेरा चाँदनी से प्यार !

दूर हैं प्रिय इन दृगों से, दूर प्रिय-आवास,
दूर अन्तर-साध की छवि, दूर है मधुमास;
दूर है मधुपर्व की श्री, दूर है उल्लास;
किन्तु इस आकुल हृदय में, जागरित विश्वास !
बीन मुझ से दूर, मेरा रागिनी से प्यार !

चढ़ नहीं सकता शिखर पर, क्लान्त मेरे प्राण,
ये नयन ही कर रहे, उस रूप का आह्वान;
सुधि जहाँ प्रिय की जगी, वह भूमि स्वर्ग समान,
क्यों न प्राणों में बसा लूँ, नाम की पहचान !
शैल मुझ से दूर, मेरा निर्झरी से प्यार !

बन चुकी है दृष्टि का धन, वह सलज मुसकान,
रश्मियों का ज्यों स्वतः धरती करे सम्मान,
अश्रु मुक्तामाल, नभ का बन रही सोपान,
बिछ रहे तारे पगों में, धन्य सात्त्विक ध्यान !
प्रात मुझ से दूर, मेरा यामिनी से प्यार !

दे रहा कण-कण किसी के रूप का आभास,
स्निग्ध अन्तर भावना, अनुभूतियों की रास,
अर्चना अनुराग-रंजित, प्रार्थनामय श्वास,
साधना का दीप, ज्योतित है अचल विश्वास;
मूर्त्ति मुझ से दूर, मेरा आरती से प्यार !
चाँद मुझ से दूर, मेरा चाँदनी से प्यार !

गीत

तुम मुझे प्रिय नीड़ में मत दो निमन्त्रण,
मैं गगन के पार जाना चाहता हूँ।
चाहता हूँ मैं गगन के पार जाना,
वायु लहरों पर थिरकना गुनगुनाना।
हैं जहाँ नित ज्योति के मधुस्वर उभरते,
चाहता हूँ शून्य में नव पथ बनाना।
दूर इस संसार की परछाइयों से,
दूर कल्मष की अमित नीलाइयों से।

त्याग रागाराग के सुकुमार बन्धन,
कल्पना को गुदगुदाना चाहता हूँ !
घुट रही है साँस इस वातावरण में,
है तिमिर बढ़ने लगा अभिलाष-वन में।
स्वस्थ सात्त्विक प्यार की मिलती न वाणी,
साधना भी साधनों की है शरण में।
दूर मदिरासिक्त इन अमराइयों से,
दूर वैभव की विरस अँगड़ाइयों से।
ध्यान पावन ज्योति लेकर मैं अकिंचन,
भावना - स्वर्लोक पाना चाहता हूँ।
प्यार तिनकों से किया भरपूर मैंने,
पर न पाया बिजलियों को दूर मैंने।
ज़िन्दगी को देखने की चाह में ही,
व्यर्थ आँखों का गँवाया नूर मैंने।
दूर नीड़ों की नवल सुघड़ाइयों से,
दूर डैनों की कठोर कलाइयों से।
छोड़ कर आधार की चिन्ता नयन धन,
शून्यता में स्वर बसाना चाहता हूँ।
फिर अमृत-सुत बीज विष का बो रहा है,
यों तिमिर का भार मानव ढो रहा है।

बढ़ रहा विज्ञान का आलोक जितना,
नाश का निर्माण उतना हो रहा है।
दूर तरु की खुश्क सी ऊँचाइयों से,
दूर जड़ता की कुरूप रुखाइयों से,
मैं विहग हूँ, भावना मेरी सचेतन,
नव सृजन के गीत गाना चाहता हूँ।

देवराज 'दिनेश'

पहाड़ी रात

हट रही हैं बादलों की टुकड़ियाँ
आ रहा है चाँद पर कुछ-कुछ निखार।

चल रही सीरी पवन हँसती हुई,
फबतियाँ कुछ प्यार की कसती हुई,
यह रंगीली रात मद से चूर है,
प्रकृति भी उल्लास से भरपूर है,
बज उठी है आज अपने आप ही—
चिर युगों के बाद जीवन की सितार।

ये हठीले मेघ शावक मौन बन,
जा रहे हैं चूम चन्दा के चरण,
गा रही हैं दूर कुछ सुकुमारियाँ,
हो रही हैं मिलन की तैयारियाँ,
ढोलकी पर अंगुलियों की थिरकनें—
कर रहीं हैं मृदुल मानस पर प्रहार।

सुन पवन की स्नेह मिश्रित झिड़कियाँ,
खुल रही हैं, मुँद रही हैं खिड़कियाँ,
इस पहाड़ी रात पर उन्माद है,
आज की हर बात ही अपवाद है,
इन क्षणों में एक सिगरेट के बिना—
आ रहा उद्विग्नताओं पर उभार।

आज मैं उद्विग्न और उदास हूँ,
दूर हूँ फिर भी तुम्हारे पास हूँ,
इधर अपने गेह के उस छोर पर,
रुक गई जाकर अचानक ही नज़र,
दीप जलने के लिये बेचैन है—
शलभ जलने के लिये है बेक़रार।

मैं कभी संघर्ष से ऊबा नहीं,
या किसी की याद में डूबा नहीं,
है बनी यह बात कहने के लिये,
स्वयं से सन्तुष्ट रहने के लिये,
सोचता हूँ है मनुज कितना छली—
जो स्वयं को छल रहा बन कर उदार।

भावनामय हृदय के आकाश पर,
घूमते हैं मेघ बन बीते प्रहर,

स्मृति तुम्हारी दामिनी की दमक सी,
बादलों के संग हृदय में आ बसी,
रूप के अपने अनेकों रूप हैं—
रूप को कोई नहीं पाया निहार।

चाँद चाहे चाँदनी से दूर हो,
चाँदनी क्यों चन्द्र के प्रति क्रूर हो,
एक दिन यह शब्द थे तुमने कहे,
जो नहीं अब याद तुम को ही रहे,
है कहीं ईश्वर अगर सुन ले ज़रा—
माँगता हूँ प्यार के दो क्षण उधार।

तारों का आराधक

मैं उन तारों का आराधक,
शोभित जिन से आकाश रहेगा जीवन भर।
जीवन की काली रातों के सूनेपन में,
चलते हैं दृढ़ निश्चय लेकर अपने मन में,
डगमग धरती, कम्पित अम्बर, हिलते भूधर—
विश्वास सदा जो रखते हैं परिवर्तन में,

मैं उन युवकों का हमराही,
जीवित जिन से इतिहास रहेगा, जीवन भर।

नयनों का नभ रहता मेघों से घिरा-घिरा,
वह मेघ नयन की सीपी में बनते मदिरा,
उस मदिरा का बेहोश न होश कभी पाता--
चिर मुखर व्यक्ति की भी हो जाती मूक गिरा,
मैं उन नयनों का अभिलाषी,
रक्षित जिन से उल्लास रहेगा जीवन भर ।

रसमय निर्झर झर-झर कर मस्ती से बहते,
हम प्रस्तर के उर की करुणा जग से कहते,
प्रिय ! इसीलिए जग प्रस्तर पूजा करता है--
प्रस्तर की प्रभुता पाले दुःख सहते-सहते
मैं उन झरनों का चिर सहचर,
मुखरित जिन से विश्वास रहेगा, जीवन भर ।

उस दिन जब कवि को कविता का वरदान मिला,
कविता के हित मधुवन में मादक पुष्प खिला,
कोयल कुहकी, भ्रमरों ने मंगल-गान किये--
कलियों ने कवि को प्यार दिया मधु पिला-पिला
मैं उन कवियों का हमजोली,
पोषित जिन से मृदु-हास रहेगा जीवन भर ।

अल्हड़ गायक ने अपनी वाणी लहराई,
वीणा की थिरकन पर मधु-ऋतु भागी आई,

भावों के शत-शत दीप जले आलोक हुआ–
जीवन की भीषण, गहन, तमिस्रा घबराई,

मैं ऐसे गायक का प्रेमी,
पुष्पित जिससे मधुमास रहेगा जीवन भर।

तू विरही फिर भी हिमकर तुझे बताते हैं,
प्रिय क्यों तेरे आँसू मोती कहलाते हैं ?
क्यों कहते हो वह आँसू, आँसू नहीं सखे !
जो औरों का दुःख देख बहाये जाते हैं ?

है धन्य चन्द्र जिस के द्वारा,
आलोकित प्रणय-प्रकाश रहेगा, जीवन भर।

मुझको अपने पर है केवल सन्तोष यही,
मेरी स्वर-लहरी मानवता की मीत रही,
मुझ से जिस दिन मेरा निर्माता पूछेगा–
रख दूँगा सम्मुख लेखा-जोखा सही-सही।

प्रिय ! मेरे गीतों को पढ़ कर,
मानव मानव के पास रहेगा जीवन भर।

गीत

आपदाओं से न डर मेरे हृदय तू–
आपदाएँ मान बनने के लिए हैं।

चाहते हैं जो मुझे भू से मिटाना,
रक्त मेरे से तृषा अपनी बुझाना,
देख कर बेचैन मुझको मुस्कराते,
पी सुरा निज जीत पर खुशियाँ मनाते,
मैं उन्हें इतना बता दूँ इस हृदय की–
वेदनाएँ गान बनने के लिए हैं।
आपदाओं से न डर मेरे हृदय तू–
आपदाएँ मान बनने के लिए हैं।

आँधियाँ मेरी डगर में चल रही हैं,
साधनाएँ दीप बन कर बल रही हैं,
कह रही हैं, 'तू अडिग बन कर चला चल,
विहँस कर पी यदि मिले तुझको हलाहल',
जानता हूँ मैं कि मेरी राह की ये–
आँधियाँ तूफान बनने के लिए हैं।
आपदाओं से न डर मेरे हृदय तू,
आपदाएँ मान बनने के लिए हैं।

जग मुझे अभिशाप दे कर हँस रहा है,
और अपने पाप दे कर हँस रहा है,

पाप मुझको छू स्वयं बन पुण्य जाते,
देख मेरी मौनता खुद ही लजाते,

और ये अभिशाप जो तुमने दिए हैं–
ये सभी वरदान बनने के लिए हैं।

आपदाओं से न डर मेरे हृदय तू,
आपदाएँ मान बनने के लिए हैं–

●

चिरंजीत

जीवन की कहानी

आज जीवन की कहानी शब्द नूतन माँगती !

प्यार में राहत कहाँ है ?
दर्द की चाहत कहाँ है ?

यन्त्र की गति तीव्रतर हो मनुज-तन-मन माँगती !
आज जीवन की कहानी शब्द नूतन माँगती !

चाँदनी के रूप का छल-
बुद्धि-आतप में गया जल,

आँख धरती की नया अब रूप-अन्जन माँगती !
आज जीवन की कहानी शब्द नूतन माँगती !

चढ़ प्रगति के शिखर पर नर-
लख चुका नभ-शून्य-अन्तर,

जाग जिज्ञासा मनुज की सत्य-दर्शन माँगती !
आज जीवन की कहानी शब्द नूतन माँगती !

युद्ध-सज्जा की कहानी-
कह न पाती भीत वाणी,

नाश-उन्मुख दनुजता लो, शांति का प्रण माँगती !
आज जीवन की कहानी शब्द नूतन माँगती !

गीत

नैश कमल की कारा में क्यों भौंरा जाग रहा ?

दूर उषा की मँज़िल गोरी,
पथिक रुका, मन की कमज़ोरी,
आप स्वयं बन्धन में बँध कर अब क्यों भाग रहा ?
नैश कमल की कारा में क्यों भौंरा भाग रहा ?

अलस कमलिनी, मुकुलित पलकें,
उलझ रहीं सौरभ की अलकें,
मधु सपनों की कुंज गली में बरस विहाग रहा !
नैश कमल की कारा में क्यों भौंरा जाग रहा ?

रूप-तृषा जब बनती अन्जन,
हाय, नहीं सो पाते लोचन,
समझा था खिलवाड़, प्यार यह अब बन आग रहा !
नैश कमल की कारा में क्यों भौंरा जाग रहा ?

सखि, कितनी उन्मद मनुहारें,
ज्यों प्राणों को प्राण पुकारें,
चरणों पर सर्वस्व समर्पित, अब क्या माँग रहा ?
नैश कमल की कारा में क्यों भौंरा जाग रहा ?

मुँदे नयन, मंद चाँद-सितारे,
बुझे दीप धरती के सारे,
पँखुड़ियों के रंगमहल में जग अनुराग रहा !
नैश कमल की कारा में क्यों भौंरा जाग रहा ?

गीत

किसी की अधमुँदी पलकें मुझे सोने नहीं देतीं !

तिमिर में आज ये परछाइयाँ भी मुस्कुराती हैं,
बिजलियाँ कौंध कर तम में मुझे खोने नहीं देतीं !
किसी की अधमुँदी पलकें मुझे सोने नहीं देतीं !

सितारे चल दिये, चल दी दिये की लौ पहरुए-सी,
घटाओं सी घिरीं अलकें सुबह होने नहीं देतीं !
किसी की अधमुँदी पलकें मुझे सोने नहीं देतीं !

यह जीवन सतत हारों की, अभावों की कहानी है,
मगर मधु रात की स्मृतियाँ मुझे रोने नहीं देतीं !
किसी की अधमुँदी पलकें मुझे सोने नहीं देतीं !

●

रामावतार 'त्यागी'

मिलते नहीं विचार ?

धरती से आकाश, गगन से धरती, कितनी दूर
मिलते नहीं विचार
प्यार का इसमें कौन क़सूर ?

यमुना ने सौ बार पपीहे को आवाज़ लगाई
चंदा को सौ बार सुनाई सागर ने शहनाई
और चकोरी ने रोते-रोते खोई तरुणाई
चन्दा से पर सिन्धु, चकोरी रहते दोनों दूर
मिलते नहीं विचार
चांद का इसमें कौन क़सूर ?

सरिता के न समान बना है वह सागर अभिमानी
सरिता ने कर दिये समर्पित तन, मन, रूप, जवानी
पर सागर का हो न सका है मीठा, खारा-पानी
तन से कितने पास हृदय से रहते कितनी दूर ?
मिलते नहीं विचार
मिलन का इसमें कौन क़सूर ?

आलिंगन के लिए लहर को कितनी बार पुकारा ?
लहर उठी ऊपर गिर जाता नीचे तुरत कगारा
और उसी के शव पर चलती जाती रोती धारा
तट तो बहुत उदास लहर भी है लेकिन मजबूर
मिलते नहीं विचार
किसी का इसमें कौन क़सूर ?

मौत ज़िन्दगी से मिलने को बहुत-बहुत ललचाई
देख ज़िन्दगी को सोते जब मौत मिलन को आई
बजा विदा का बिगुल ज़िन्दगी तब होगई पराई
मौत, ज़िन्दगी कभी न मिलते दुनिया का दस्तूर
मिलते नहीं विचार
समय का इसमें कौन क़सूर ?

जब तक दीपक जगा, जागते रहे बहुत परवाने
उनके आगे, तम दीपक से, कैसे प्रीत बखाने ?
वे सोये तो दिया सोगया चादर लम्बी ताने
तम दीपक के बैठ सिराहने रोता है मजबूर
मिलते नहीं विचार
दिये का इसमें कौन क़सूर ?

कंठ किस का स्वर किसी का

रात की लय में किसी का स्वर मिला है,
कंठ है निशि का मगर स्वर और का है।

दर्द ज्यादा बढ़ गया है आदमी का,
शाम शायद इस लिए खामोश है।
प्रात के लोचन गुलाबी इसलिए,
जन्म को शायद मरण पर रोष है।
चाँद आता है न निशदिन व्योम में,
क्योंकि आगत आदमी का तम भरा।
आदमी भी आदमी की क़ैद में,
सिन्धु की जंजीर में बन्दी धरा।

इसलिये रहते न महलों में विहग हैं,
बस रहा कोई मगर घर और का है।

ज़िन्दगानी मौत का पर्याय है,
आप बुझ जाते सितारे इसलिए।
क्योंकि मिलना, मौत होता प्यार की,
खुद न मिलते हैं किनारे इसलिए।
अनगिनत आँसू धरा की गोद में,
रात भर रोई किसी की लाज है।

फूल काँटों की बगल में इसलिए,
रूप अब भी शक्ति का मोहताज है।

इसलिये संयोग लगता है विरह सा।
तन किसी का और अन्तर और का है।

विश्व का व्यापार उल्टा इसलिए,
हर उजाले में भरी रहती जलन।
जागती है ज्योति औरों के लिए,
स्वार्थी तम चैन से करता शयन।
भूमि पर पानी हज़ारों मन गिरा,
भूमि का उर तो हुआ शीतल नहीं।
क्योंकि हो मजबूर रोया था गगन,
प्यार से उसने गिराया जल नहीं।

नर्तकी का पैर यों शरमा गया है,
पैर उसका किन्तु नूपुर और का है।

नया राग दूँगा

चलो साथ मेरे नयी राह पर तुम,
नई ज़िन्दगी का नया राग दूँगा।

बहुत कश-मकश हो रही ज़िन्दगी में,
विषमता मिटाये नहीं मिट रही है।

तिमिर की सतह होगई बज्र जैसी,
कि काटे किरन से नहीं कट रही है।
तुम्हें आग ऐसी जलानी पड़ेगी,
तिमिर को स्वयं एक ईंधन बनाकर।
कि वह कालिमा ज्योति बन जल उठे जो,
बहुत यत्न से भी नहीं घट रही है।
नहीं लाख तूफ़ान से बुझ सकेगी,
तुम्हें वह जवानी भरी आग दूँगा ॥

तुम्हारे पगों से, अचम्भा नहीं है,
तुम्हीं को ज़माना कुचलता रहा है।
तुम्हारे बनाये हुए चित्र से ही,
तुम्हें आदमी रोज़ छलता रहा है।
तुम्हें दासता का पिलाया गया,
जो ज़हर तुम उसी को धरम मान बैठे।
तुम्हारा गढ़ा गोल पत्थर तुम्हारी,
अक़्ल पर बहुत हाथ मलता रहा है।
तुम्हें ज़िन्दगी से बड़ा प्यार होगा,
नई दृष्टि, अनमोल अनुराग दूँगा ॥

सताया हुआ कुछ कहे भ्रम विवश हो,
मगर आग दिल में सभी के सुलगती।

भटक तुम गये कल्पना के चितोरो,
न प्यारी धरा ही तुम्हें आज लगती।
चरण टिक रहे हैं धरा पर तुम्हारे,
मगर सोचते उड़ रहे हो गगन में।
पराश्रित हुए बुद्धि को बेच ऐसे,
निराशा न तुमसे ज़रा दूर भगती।
गिरों को हृदय से लगाते चलो तुम,
तुम्हें ज़िन्दगी का नया फाग दूँगा॥

हमें आज ऐसे चरण चाहियें जो,
न डरते कभी लाल अंगार से भी।
बहारें उन्हीं के चरण चूमतीं जो,
विटप सूख जाते न पतझार से भी।
निराशा भरी रात है बीतने को,
लिये लाल किरनें सुबह आ रही है।
उसी नाव को तीर देता निमन्त्रण,
लरजती न जो नाव मझधार से भी।
क़दम तो उठाओ प्रगति पन्थ पर तुम,
छलकते हुए स्नेह में पाग दूँगा॥

●

गोपालकृष्ण 'कौल'

पहली बूँद

वह पावस का प्रथम दिवस जब,
पहली बूँद धरा पर आई।
अंकुर फूट पड़ा धरती से,
नव-जीवन की ले अँगड़ाई।

धरती के सूखे अधरों पर,
गिरी बूँद अमृत-सी आकर।
वसुंधरा की रोमावलि-सी,
हरी दूब पुलकी-मुस्काई।
पहली बूँद धरा पर आई॥

आसमान में उड़ता सागर,
लगा बिजलियों के स्वर्णिम पर।
बजा नगाड़े जगा रहे हैं,
बादल धरती की तरुणाई।
पहली बूँद धरा पर आई॥

नीले नयनों सा यह अम्बर,
काली पुतली-से ये जलधर।

करुणा-विगलित अश्रु बहाकर,
धरती की चिर-प्यास बुझाई।
बूढ़ी धरती शस्य-श्यामला
बनने को फिर से ललचाई।
पहली बूँद धरा पर आई॥

भूख और ममता

मिट्टी का वरदान
हृदय की धड़कन
प्राणों की पहिचान
संघर्षों का लक्ष्य
शीतल पूनम की चन्दा-सी
बालारुण-सी तप्त
मानवता के रात-दिवस में-
रोटी यह।
इस रोटी की चक्र-धुरी पर
जीवन-रथ आगे बढ़ता है
चिन्तन के फूलों के जड़ में
यह उपजाऊ खाद
यही मनुजता की धमनी में द्रुतगति रक्त-प्रवाह
इतिहासों की स्याही

क्रान्ति का निर्भय उत्साह
इसका इश्क भूख कहलाता
फिर भी आशिक हैं सब इस पर।

× × ×

कहते हैं इससे भी बढ़कर
होती है—माता की ममता
जो रक्त-स्नेह से
यौवन के सर्वस्व-दान से
पत्थर में अंकुर उपजाती
जैसे धरती रक्तदान कर
अंकुर को जीवन देती है
अंकुर तरु को
तरु का रक्त-दान उपजाता
फूलों और फलों को—काँटों को भी।
माँ भी धरती से क्या कम है
जो अपने फूलों-काँटों को
भूखी रहकर पाला करती।

× × ×

किन्तु आज
भूकम्प-पीड़िता धरती-सी
यह भूखी माता

हो परास्त रोटी के इश्क से
रक्त स्नेह से पालित
अपने फूल नहीं, अंकुर को ही
ममता की धरती से उखाड़ कर
शूल समझ कर बेच रही है
वह बेच रही
भावी भारत के नेता को
स्वयं भूख-सी।

× × ×

यह ममता पर विजय भूख की ?
या माता की कमज़ोरी है ?
कौन बताए ?
बिकने वाली, औलाद बता सकती है
यदि उसको
पुरातत्त्व के संग्रह में
रखा जाय सुरक्षित
भूख के स्मारक-सा।

मृत्यु और जीवन

मृत्यु-पराजित वरदानों से
अभिशापित जीवन अच्छा है।

जिसने सत्य नहीं देखा है
जीवन के जागृत-स्वप्नों में
चलती-फिरती लाश बन गया
जो जीवन के मधुर क्षणों में

ऐसे शाश्वत-जीवन से तो
गौरव-पूर्ण मरण अच्छा है।

वह अमृत क्या, जो जीवन के
विष को भी चिर अमर बना दे
जिसकी एक बूँद जीवन की
मौन तृप्ति में प्यास जगा दे

ऐसे अमृत के मधु से तो
एक गरल का कण अच्छा है।

जो पथ के आकर्षण में ही
भूल गया मंजिल तक जाना
जो निशि के स्वप्नों में खोकर
भूला सजग प्रभाती गाना

ऐसे सुख की सरस नींद से
दुःख का जागृत क्षण अच्छा है।

केवल आँधी की आहट से
पर समेट जो रुक जाता है
लख अपार विस्तार गगन का
जो उड़ने से घबड़ाता है

ऐसे खग को आज़ादी से तो
शाश्वत बन्धन अच्छा है।
मृत्यु-पराजित वरदानों से
अभिशापित जीवन अच्छा है।

●

बाबूराम पालीवाल

प्रेरणा

मैं तो मूर्तिकार हूँ केवल, प्राण-प्रतिष्ठा तुम करती हो।

मैंने अपने भावुक मन में,
अपना लघु संसार बसाया,
तुमने अपनी स्वाँस-स्वाँस से,
उसमें प्राणों को सरसाया,

एक अचेतन का कर्ता मैं, चेतनता तो तुम भरती हो।
मैं तो मूर्तिकार हूँ केवल, प्राण-प्रतिष्ठा तुम करती हो।

फूल बनाये मैंने उनमें,
रंग तुम्हीं ने तो भर डाले,
सुन्दर किया असुन्दर को औ'
ये मृण्मय, सन्मय कर डाले,

जो था अशिव उसे शिव करके, जीवन-कल्मष तुम हरती हो।
मैं तो मूर्तिकार हूँ केवल, प्राण-प्रतिष्ठा तुम करती हो।

मैं कविता का स्रष्टा कब था,
यदि तुमसे पहिचान न होती,

गाने को कुछ गीत न होते,
उनमें कोई तान न होती,
गीतों में यति-गति भर भर रस-निर्झरणी-सी तुम झरती हो
मैं तो मूर्तिकार हूँ केवल, प्राण-प्रतिष्ठा तुम करती हो।

तुम हो तो कवि के जीवन में,
कविता, कविता में जीवन है,
जीवन में यदि तुम्हीं नहीं तो,
कविता केवल शून्य रुदन है,
पर मेरे रोदन गायन में, सन्तत, अविरल गुम ढरती हो।
मैं तो मूर्तिकार हूँ केवल, प्राण-प्रतिष्ठा तुम करती हो।

नये दीप से घर सजाओ, सजाओ !

नया युग, नई बात !
नूतन दिवस रात !
लेकर नये धान, नव साधनों से,
नई लक्ष्मी को मनाओ, मनाओ।

नये दीप से घर
सजाओ सजाओ !
भूलो विगत बात,
भूलो कठिन रात,

दीपक सजाकर, सरस स्नेह के फिर,
मनों से अमा को मिटाओ, मिटाओ।

नय दीप से घर
सजाओ सजाओ !
चरण युग बढ़ा दो,
जगो, जग जगा दो,
लिये दीपमाला करोड़ों करों में,
नई ज्योति ज्वाला जगाओ, जगाओ।

नये दीप से घर
सजाओ, सजाओ।

मत दीप धरो !

धार पर अब मत दीप धरो
अपने शशि-आनन की आभा
दीपक में न भरो

धार पर अब मत दीप धरो।
उर-ज्वाला दीपक में भरके
मन के सुमन समर्पित करके
सजल नयन, कम्पित अधरों से
मत यों विनय करो

दृगों से झर-झर-झर न झरो।
धरा में यौवन-प्रवाह है
मधुर मिलन की अमर चाह है
सुमुखि, समर्पण की दुनिया में
बाधा से न डरो

सहज साहस से विजय वरो।
किन्तु धार से लड़ना सीखो
संघर्षों में अड़ना सीखो
कूद पड़ो अब बीच धार में
डूबो या कि तरो
धार पर, पर, मत दीप धरो।

शान्ति सिंहल

गीत

मैंने गीत कहाँ गाया है ?

अपने ही नीरस जीवन में,
मैंने नव उल्लास भरा है !
अपने सूने प्राण-विपिन में
प्रिय ! मैंने मधुमास भरा है ?
अपने ही वीणा के उलझे,
तारों को बस सुलझाया हैं !
मैंने गीत कहाँ गाया है ?

नहीं मुझे संकोच कि मेरी–
भाषा में कुछ जान नहीं है।
नहीं मुझे संकोच कि भावों-
पर सुन्दर परिधान नहीं है !
नहीं जगत के लिए लिखा है
अपना ही मन बहलाया है !
मैंने गीत कहाँ गाया है ?

तुमने ही मेरी खुशियों को
आँसू पी जाना सिखलाया !
तुमने ही अन्तर के स्वर को
ओठों पर आना सिखलाया !
तुमने जो कुछ सिखलाया था
मैंने उसको दोहराया है !

गीत

जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गये
विश्व की पहचान लेकर क्या करूँ ?
जब न तुम से स्नेह के दो क्षण मिले,
व्यथा कहने के लिए दो कण मिले !
जब तुम्हीं ने की सतत अवहेलना,
विश्व का सम्मान लेकर क्या करूँ ?
जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए।
विश्व की पहचान लेकर क्या करूँ ?
एक आशा एक ही अरमान था,
बस तुम्हीं पर हृदय को अभिमान था।
पर न जब तुम ही हमें अपना सके,
व्यर्थ यह अभिमान लेकर क्या करूँ ?
जब तुम्हीं अनजान बनकर रह गए,
विश्व की पहचान लेकर क्या करूँ ?

दूँ तुम्हें कैसे जलन अपनी दिखा,
दूँ तुम्हें कैसे लगन अपनी दिखा ?
जो स्वरित होकर न कुछ भी कह सकें
मैं भला वे गान लेकर क्या करूँ ?
जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए
विश्व की पहचान लेकर क्या करूँ ?

शलभ का था प्रश्न दीपक से यही,
मीन ने यह बात जीवन से कही
हों विलग तुम से न जो फिर भी मिटें
मैं भला वे प्राण लेकर क्या करूँ ?
जब तुम्हीं अनजान बनकर रह गए,
विश्व की पहचान लेकर क्या करूँ ?

अर्चना निष्प्राण की कब तक करूँ ?
कामना वरदान की कब तक करूँ ?
जो बना युग-युग पहेली सा रहे,
मैं वही भगवान लेकर क्या करूँ ?
जब तुम्हीं अनजान बनकर रह गए,
विश्व की पहचान लेकर क्या करूँ ?

अभी यह प्रश्न शेष है !

उठीं गिरी, गिरी उठीं हज़ार बार लहरियाँ,
परन्तु कूल है कहाँ अभी यह प्रश्न शेष है ?
कभी प्रकाश रश्मियाँ तिमिर कलुष मिटा गईं।
कि अंधकार कूप में कभी स्वयं समा गईं।
जलीं, बुझी, बुझी जलीं अनेक जन्म-वर्तिका
परन्तु ज्योति है कहाँ, अभी यह प्रश्न शेष है ?

न रोक तूलिका सकी, न चित्र ही बना सकी।
न रोम-रोम में पली निकाल भावना सकी।
बने, मिटे, मिटे बने अपूर्ण चित्र बार-बार,
परन्तु रूप है कहाँ, अभी यह प्रश्न शेष है ?

प्रगाढ़ नींद में सुसुप्त विश्व की विभूतियाँ।
कि मौन रात कर रही प्रभात की मनौतियाँ।
कही, सुनी, सुनी कही यही कथा अनन्तबार
परन्तु अन्त है कहाँ, अभी यह प्रश्न शेष है ?

न लक्ष्य ही बदल सका, न राह ही बदल सकी
न भाग्य ही बदल सका, न चाह ही बदल सकी
चला रुका, रुका, चला भ्रमित पथिक अनेक बार
परन्तु लक्ष्य है कहाँ, अभी यह प्रश्न है ?

●

क्षेमचन्द्र सुमन

तुम मिलीं

तुम मिलीं मुझे वरदान मिला,
अवदान नियति का नित नूतन !

उस रोज अचानक जीवन के–
गति-पथ पर प्रिय तुम मुझे मिलीं।
मैंने समझा सौभाग्य, और
जीवन की मुरझी कली खिली।
साँसों की सिहरन में व्यापा
ममता का मृदुतम नव दुलार,

अँग-अँग के सिहरन से निकली,
ध्वनि' देवि तुम्हारा अभिनन्दन !'

जो मूक व्यथा हिम में सोई
पा सरस परस तब जाग उठी।
अलहड़ यौवन की अभिलाषा
क्रीड़ा का अञ्चल त्याग उठी।

उन नवल सरल संकेतों के मिस
तुमने जो पीड़ा घोली,
वह नहीं सँभाले से रुकती,
करती इन आहों का अङ्कन !

मैं जन्म-जन्म का याचक हूँ
तुम स्नेहमयी कल्याणी हो।
मैं अटल प्रेम का अभिलाषी
तुम 'मीरा दरद-दिवानी' हो।
समझूँगा भाग्य खुले मेरे
तुमसे जीवन को ज्योति मिली।

संसृति का शाश्वत सत्य अहो,
यह सुखद तुम्हारा आलम्बन !
तुम मिलीं मुझे वरदान मिला,
अवदान नियति का नित नूतन !

तुम चाहो, जो करो

कौंध गई सहसा अन्तर में,
बिजली-सी तव याद पुरानी !
जीवन में तूफ़ान लिये निर्झर-सा,
जागी आज जवानी !

जब तुमने मेरे मानस में,
रेगिस्तानी प्यास जगाई।
और अमर अनुराग लिये निज—
अधरों की भी सुरा पिलाई।
वह क्षण दूर हुए क्यों सुन्दरि,
आज भाग्य क्यों रूठा रानी!

कुहुकिनि, दूर आज तुम यद्यपि,
याद तुम्हारी कर लेता हूँ।
करके अहरह ध्यान तुम्हारा,
जीवन-तरणी को खेता हूँ।
देखो, आज विहँसते सब ये,
रवि, शशि, तारे और हिमानी!

तुम मेरे उपवन की शोभा,
तुम मेरे नन्दन की रानी।
देवि, कल्पना पाती तुमसे,
जीवन, यौवन और रवानी।
तुम ही कहो, सुमुखि यह कैसे,
पीड़ा छिप सकती तूफ़ानी!

आज हृदय से हृदय मिलाकर,
और प्राण में पुलकन भर के।

कह दो, 'देव तुम्हारी ही हूँ',
मधुर अधर में थिरकन करके।

तुम चाहो जो करो, समर्पित-
तन, मन, प्राण प्रेम-अभियानी !
कौंध गई सहसा अन्तर में,
बिजली-सी तव याद पुरानी !
जीवन में तूफान लिये निर्झर-सा,
जागी आज जवानी !

●

रामानन्द दोषी

गीत

फूल बन कर बस गया हो जो हृदय में
मैं उसे पाषाण कैसे मान लूँ ?

जो तिमिर से जूझ मरने से प्रथम
खींच लाया हो उषा के छोर को,
आँख अपनी मूँदने से पूर्व ही
खोल आया हो किसी दृग कोर को,

मौत पर जो मुस्कुराए मैं उसे
दीप का निर्वाण कैसे मान लूँ ?

दर्प उन्नत नील नभ में झूमता
चूमता जिसके चरण संसार है।
आँधियाँ, आतप, उपल जो सह रहा
वह हिमालय-सम, मुझे स्वीकार है।

पर न पिघले जो किसी के दर्द से
मैं उसे हिमवान कैसे मान लूँ ?

क्रुद्ध लहरें मथ रही हैं सिन्धु तन
आ रहे उड़ते बवंडर धूल के।
है प्रलय का नाद जगती में उठा
रौंद डाले व्यूह कितने शूल के।
पर न बंध जाए कली के प्यार में
मैं उसे तूफ़ान कैसे मान लूँ ?

लपलपाती हाथ में तलवार ले
शत्रुओं की पंक्तियों को चीरता,
बढ़ रहा जो बिजलियों के वेग सा
धन्य है उस वीर की सच वीरता,
किन्तु निर्बल की न रक्षा कर सके
मैं उसे बलवान कैसे मान लूँ ?

ज़िन्दगी मजबूरियों की शृंखला,
शृंखला को तोड़ना आसान कब ?
काल-सरि की वेगवन्ती धार को
मोड़ पाता है भला भगवान कब ?
पर नियति के बन्धनों में बंध चले
मैं उसे इन्सान कैसे मान लूँ ?

प्रणय के निश्वास

आज कुछ ऐसे सन्देसे आ रहे हैं,
अश्रु मेरे हास बनते जा रहे हैं।

प्यास पर यूँ था न कुछ मेरा नियन्त्रण,
देर से लेकिन मिला तेरा निमन्त्रण।
अब तो मैं इस प्यास ही को पी चुका हूँ,
गुत्थियाँ सुलझा सभी उलझी चुका हूँ।

आज मेरे प्यार सीमाहीन होकर,
तृप्ति का अहसास बनते जा रहे हैं।

चल रही हैं आज कुछ ऐसी हवाएँ,
काँपतीं जिनसे शिलाओं की शिराएँ।
रात ने भी खोल डाले केश काले
और मेरे पर किसी ने नोच डाले।

किन्तु मत समझो सफ़र का अन्त इसको,
फिर नये विश्वास जगते जा रहे हैं।

मैं इसी विश्वास का लेकर सहारा,
खोजता मँझधार में भी हूँ किनारा।
जानता पर लहर की एक दिन रवानी,
हार की बन जायगी मेरी कहानी।

किन्तु मेरी जीत के दो क्षण समूचे,
विश्व का इतिहास बनते जा रहे हैं।

है नहीं बन्धन मुझे जीवन मरण का,
पथ हुआ है दास मेरे चल-चरण का।
सैर करता हूँ बवंडर की तरी पर,
आग ही पीता रहा हूँ ज़िन्दगी भर।

प्रलय के उच्छ्वास मेरे गीत में अब,
प्रणय के निश्वास बन कर जा रहे हैं।

विनोद शर्मा

······तुम चमक कर खो गईं !

मूँद कर पलकें अचानक,
भावनाओं की लहर में वह गया।
प्रिय तुम्हारे हास की–
बिजली तभी चमकी हृदय में
मैं ठगा सा रह गया
आगया मुझको तुम्हारा ध्यान
बेकली सी बढ़ी,
मिलनातुर हुए ये प्राण
किन्तु चपले ! तुम चमक कर खो गईं,
और मेरे सामने फिर वही काले मेघ–
असमय के घिरे हैं।

सन तिरेपन

बढ़ रही है भूख
बढ़ती जा रही है भूख
पेट की भड़की हुई इस समस्या की आग

जैसे एक दिन–
आदमी को आदमी खा जायगा
बन रही हैं योजनाएँ,
छप रहा है कागजों पर कार्यक्रम ।
जन रही हैं योजनाएँ,
बड़े तबक़े के लिये कुछ मनोरंजन ।
और धन से धन भिड़ा कर–
धन बनाने के नये साधन ।
घट गया है आदमी का मूल्य
आज पैसा बहुत ऊपर उठ गया इन्सान से ।
तीन सौ पैंसठ दिनों के बाद भी ये नया साल–
आगया है, चीख़ता बेरोज़गारी, भुखमरी का राग ।
बुन रही है मौत काला जाल ।
किन्तु ये सब और अब कब तक चलेगा ?
आदमी के ख़ून पर यों आदमी कब तक पलेगा ?
सड़ गई है ये समाज-स्थिति,
बदलनी ही पड़ेगी ।
हाँ बदलनी ही पड़ेगी ।
बढ़ रही है भूख, बढ़ती जा रही भूख ।
जन रही हैं योजनाएँ बड़े तबक़े के लिये कुछ मनोरंजन ।
आज पैसा बहुत ऊपर उठ गया इन्सान से ।

प्रयाग नारायण त्रिपाठी

वृक्ष और वल्लरी

सर्पिणी जैसी लहराती-सी, हरी,
वृक्ष के ढिग ऊग आई वल्लरी।

ऊग आई तोड़ अचला का हृदय,
तोड़ मिट्टी का अँधेरा, भार, भय।

वृक्ष विस्मित-सा झुकाकर डालियाँ,
पल्लवों की पीटता सा तालियाँ,

वायु से बोला—अरी सुनना सखी।
वल्लरी की लालसा तूने लखी ?

वह वलय लेकर पड़ी जो पास में,
वह अड़ी सी किस न जाने आश में ?

पाँव मेरे चूमना-सा चाहती,
झूल मुझ पर झूमना-सा चाहती।

मैं कहूँ, यह व्यर्थ उसका योग है,
इष्ट मुझको कब भला यह रोग है ?

मैं सदा से मुक्त हूँ, मैं मुक्त हूँ,
बँध सकूँ, ऐसा नहीं अभियुक्त हूँ।

वल्लरी ! मत बाँधने की चाह कर,
दूसरी ही ओर अपनी राह कर।

वल्लरी ! मत यों हृदय में दाह कर,
रुद्ध मत मेरी सहज यह राह कर।

मुक्त हो मैं बढ़ रहा आकाश को,
तोड़ वसुधा के सलोने पाश को।

तोड़ आकर्षण सभी मैं चढ़ रहा,
मुक्त हो मैं व्योम-पथ पर बढ़ रहा।

वल्लरी ! यों मौन करुणा में सनी,
किसलिए तू पाँव की हड़कल बनी ?

चाहता हूँ, मैं तुझे देखूँ नहीं,
चाहता हूँ, मन नहीं जाये कहीं;

चाहता हूँ, मैं स्वयं ही में रहूँ,
ना किसी की कुछ सुनूँ, ना कुछ कहूँ,

चाहता हूँ मैं अकेली ज़िन्दगी,
वल्लरी ! तू क्यों निकट मेरे जगी ?

वायु ! तू साक्षी हृदय की बात की,
कह रही क्या बात ध्वनि प्रतिपात की,—

मुक्ति की एकान्त पीड़ा में पगी,
चाहता हूँ मैं अकेली ज़िन्दगी।

वृक्ष कितना भी कहे, कुछ भी करे,
मुक्ति बँधन से नहीं उसकी, अरे।

शीघ्र ही सम्पूर्ण वह कस जायगा,
वल्लरी की बाँह में बस जायगा;

हो निपट निरुपाय झोंके खायगा,
कसमसायेगा, नहीं छुट पायगा।

फिर सुला देगी उसे, गा लोरियाँ,
तितलियों की रंग-भरी किशोरियाँ।

गीत पंछी भी सलोने गायँगे,
मुक्ति के मृदु स्वप्न मिटते जायँगे।

आयगी ले-ले सिसकियाँ सुधि-परी,
पूर्व-स्मृति करने कभी कुछ-कुछ हरी।

उग रही है, ले अजब जादूगरी,
मद-भरी बहियाँ डुलाती वल्लरी।

सर्पिणी जैसी लहरती-सी, हरी,
ऊगती ही आ रही है वल्लरी!

मेरे प्रेरक

कोमल चितवन में, मन मोहन,
तुम दे देते हो जो मिठास,
उसको पाकर कितने पुलकित
हो उठते मेरे स्वर उदास।

सुकुमार स्पर्श से, जीवनधन,
तुम कर देते जब मृदुल प्राण,
तब परम हर्ष से उमड़-उमड़
उठते अंतर के सुप्त गान।

मद भरे अरुण अधरों पर जब
बलि हो जाती मुसकान चपल,
तब विवश समर्पण की ध्वनि से
भर जाता गीतों का अंचल !

जब सुन लेते हैं कभी श्रवण
विह्वल, वासन्ती कोमल स्वर,
कितनी मस्ती से, सिहर-सिहर,
तब लहरा उठते स्वर-निर्झर !

मेरे अनंत मीठे प्रेरक,
मेरे अमंद वरदान प्राण,
मेरे अणु-अणु को कर देते
तुम कितने मधु-मय स्वर प्रदान !

इन्द्रप्रताप तिवारी

केन्द्र-बिन्दु

आओ हम तुम
राजमार्ग से अलग नयी पगडण्डी पर चल
अपने प्राणों की उफान को
नयी दिशा दें
क्यों कि आज तक
पुरुष और नारी के आलिङ्गन छाया में
वैयक्तिक शीतलता पनपी,
दो मन केवल एक हुये हैं
तन की दीवारों के बाहर।
हम तुम आओ
मिलें
और मिलकर परिभाषा नयी बनायें आकर्षण की।

'नर नारी का मिलन नहीं एकत्व
हम तुम मिलते हैं केवल अनेक होने को'
इसीलिये हम-तुम मिल, आओ

नयी राह पर
विस्तृत अपनी परिधि बनायें
जिसकी धुरी बने समवाय
भूलें हम तुम अपने 'मैं' को
अपनी गरिमा को समष्टि का अंग मान कर

किन्तु न भूलें
है समष्टि भी स्वयं
क्षुद्र लघु अंश सृष्टि का
और सृष्टि भी आधारित है
रवि, शशि, धरती, और ग्रहों के आकर्षण पर

आओ हम तुम
अपने आकर्षण से–
नयी समष्टि बनायें
जिसमें मानव
केवल आकर्षण को समझे
अपनी व्युत्पत्ति का कारण
कारक, क्रिया, समास।

आओ हम तुम
मिलकर
केन्द्र बिन्दु बन जायें।

नयी आराधना

हे आराधित !
यदि अभीष्ट था
मैं नतमस्तक
दीन हीन वर माँगूँ तुमसे
महा मोक्ष का
जीवन को जीवनारोह का अवस्थान कह
तो फिर बोलो
पावक, गगन, समीर और पानी, माटी से
क्यों निर्माण किया मेरा ?
मैं विवश आज
मुझको हुलसित करती
माटी के लोनों की सुगन्धि सोंधी
लपटें अंगारों की मुझको तेजस्वित करतीं
और लहलहाते खेतों में
गेहूँ सरसों की बालों के सौरभ
का हिलोर भर जाते
प्राणों में समीर के झोंके
सावन की जलधार
छहर कर मेरे खेतों में
जीवन का प्यार उगाती ।

मैं उत्साहित
धरती पर बिखरे जीवन की चहलपहल में
थिरक रहा हूँ।
अस्तु,
आज तुम
मुझे भुला दो।
तुम्हें चाह थी
मैं अपना आकर्षण
अपना ध्यान
तुम्हीं पर केन्द्रित करता
तो
तन्मात्र
मुझे तुम रचते
सूक्ष्म
धरा प्रतिध्वनित न होती
मेरे पैरों की आहट से
और
स्वर्ग का आरोही बन
मैं नतमस्तक
तुम्हें पूजता।

जगदीश 'विद्रोही'

कल्पनाओं के घरौंदे मैं मिटाना चाहता हूँ ।

मैं धरा का आदमी हूँ क्या गगन की वात जानूँ
चिर-वियोगी हूँ किसी के क्या मिलन की वात जानूँ
दूर तक फैले हुये मेरी धरा पर खेत सुन्दर—
भूमिवासी मैं कहाँ नभ के चमन की वात जानूँ
तुम मुझे उन्माद की रौ में वहाना चाहते हो
तुम मुझे आदर्श की लौ पर जलाना चाहते हो
नास्तिक समझो मुझे, इन्सान रहने दो मगर तुम—
व्यर्थ ही इन्सान से पत्थर बनाना चाहते हो
    चाहते हो कल्पनाओं में मुझे बन्दी बनाना—
    शृंखलाएँ तोड़ मैं तो मुक्ति पाना चाहता हूँ ।
मैं अनल से क्या डरूँगा सिन्धु का तूफान हूँ मैं
भूचाल से जो डिग न पाये वह अटल चट्टान हूँ मैं
तुम कहा करते खिलौना आदमी भगवान का है—
देव-निर्माता स्वयं भगवान का भगवान हूँ मैं
चाहते हो तुम नरक की भीति दे मुझको डराना
चाहते हो पाप के भय से मुझे वुज़दिल बनाना

पुण्य को पुचकारती है पाप की पतवार साथी
सिन्धु के तूफान में मुश्किल बहुत माँझी कहाना
स्वर्ग के कल्पित सदन तुमने धरा पर जो सँजोये
मैं प्रगति की फूँक से उनको उड़ाना चाहता हूँ।

नूपुरों में झूमता अभिमान का आसव रहा है,
सामने मरता ठिठुर कर भूख से मानव रहा है,
ईंट मन्दिर की खड़ी हैं खून से लथपथ धरा पर—
भगवान का स्वर्णिम शलाखों में तड़पता शव रहा है।
चल पड़ा मानव पुनः पथ पर लिये अधिकार अपना,
सत्य होगा आज भू पर स्वर्ग सा साकार सपना,
आ न पायेगा मरण त्यौहार जीवन के डगर में—
पत्थरों पर सर झुकायेगा नहीं इन्सान अपना,
प्रात लिखता है नया इतिहास नूतन जिन्दगी में
मैं चमन में फिर नई मुस्कान लाना चाहता हूँ।

जीने का अधिकार चाहिये!

आज न वैभव की अभिलाषा,
नहीं स्वर्ण का दान माँगता,
नहीं किसी से खून चाहता,
नहीं किसी के प्राण माँगता,
मुझे नहीं सम्मान चाहिये,
और प्रेयसि की उत्कण्ठा,

केवल दलितों पर मिटने का
युवकों से वरदान माँगता ।
हमें क्रान्ति के लिये शहीदों के पग की रफ्तार चाहिये !
दें जीवन सन्देश,
चितेरों की चलती रंगीन तूलियाँ ।
नई भावना दें समाज को,
कलाकार की कुशल उंगलियाँ ।
नीतिकार हम को साहस दो,
कवि हमको परिवर्तन दे दो,
गायक अपने मधुर कण्ठ से,
तुम उगलो जलती फुलझड़ियाँ ।
करने को निर्माण आज फिर सैनिक की तलवार चाहिये !
हमें प्रगति के लिए
शहीदों का केवल संदेश बहुत है ।
थकें न विप्लव के साथीगण
चलना आगे शेष बहुत है,
जीवन में संकल्प वही है,
प्राणों में अरमान वही है—
हमें बड़ों का मौन रहें वे
बस केवल आदेश बहुत है ।
नारी के आँचल से हमको माँ का शीतल प्यार चाहिये !

ईश कुमार 'ईश'

गीत

खड़ी राह देखूँ !

मुझे आज प्रतिपल हुआ कल्प के सम
युगों से खड़ी लोचनों में लिये तम
अहो ! प्राण, मेरी दिशा जगमगाओ !
तुम्हारे बिना मैं अंधेरी निशा हूँ !
खड़ी दूर तारा बनी मैं निलय की—
सजल भावना में मधुर दाह देखूँ

खड़ी राह देखूँ !

दिवस हँस रहा है, निशा रो रही है,
गगन खिल रहा है, दिशा सो रही है।
निलय में निराश्रित विचरती पवन-सी—
सहज कल्पना, चेतना प्राण ! मेरी।
सजग दीप निर्मम अरे मुस्कराता !
मगर कीट की प्राणमय चाह देखूँ !

खड़ी राह देखूँ !

शिखर मौन है, पर नदी बह रही है !
नियति यन्त्रणा पर सदा गति रही है।

मगर आज कोई न सुनता करुण स्वर
गगन शून्य है, यह धरा औ प्रकृति भी !
अरी रैन ! करवट बदल ले ज़रा तू
अगम सिन्धु है, मैं वहाँ थाह देखूँ !
खड़ी राह देखूँ !

गीत

स्वप्न में प्रिय कल्पतरु की छाँह में।

रस-भरी थी रात भीनी, मन्द सुरभित वायु भी थी,
पास ही कल्लोलिनी भी हृदय छू-छू बह रही थी।
'कल्पना' उस स्वर्ग की रानी, नयन की तारिका,
सो रही थी भावना बन कर किसी की बाँह में।

स्वप्न में प्रिय कल्पतरु की छाँह में।

चाँद जब मधु-यामिनी की आँख में जा मुस्कुराया,
नव प्रकृति ने तब सलज होकर पलक घूँघट उठाया।
सिहरकर तब वह मदिर मधु-दीप की लौ तिलमिलायी,
अलि अधर-पल्लव हुए आकुल सुमन की चाह में।

स्वप्न में प्रिय कल्पतरु की छाँह में।

मलय-दल वातायनों से झाँकते थे शुभ्र-तारे,
निष्पदीय अनन्त-पथ पर विहँसते थे मौन सारे।
और पुष्पों के सुघर पर्यंक पर रति केलि करती,
फूल झड़ते थे गगन के किन्तु तम था राह में।

स्वप्न में प्रिय कल्पतरु की छाँह में।

बलवीर सहाय

गीत

रात का अन्तिम पहर है।
सो रही सरिता सलोनी व्योम के भुज पाश में
जग रही केवल चकोरी ही मिलन की आस में
किन्तु पत्ते पेड़ के हिल-हिल निरन्तर कह रहे....
चाँद का अन्तिम सफर है।
बन्द पंकज में पड़ा, भँवरा विचारा बन्द है
और धरती के स्वरों में भर रहा मकरन्द है
किन्तु छेड़ा राग लहरों का सुहानी गंग ने
प्रात में थोड़ी कसर है।
कूकने को कोकिला भी आम्रतरु पर आ गई
दूर से ऊषा क्षितिज पर मुस्कुराती है नई
और तब ही चान्दनी को चाँद ने सिमटा लिया
प्यार का पहला पहर है।

गीत

चाँद नीले निलय में रहा देखता—
चाँद की चाँदनी जब चुरा ली किसी ने !

जब कि कोई तराने नये गा गया,
गीत आकाश पर दूर तक छा गया।
जबकि कोई शिला के निकट बैठकर,
उस निशा को बुलाने कहीं आ गया।
तभी मंच पर यवनिका रात की
उठा दी; दिवस की गिरा ली किसी ने।
जब उषा को मनाने चली यामिनी,
औ धरा को बुलाने चली चाँदनी।
और रवि की किरन के सुलभ दान पर,
जब खगों को जगाने चली रागिनी।
तभी नाचती एक तितली चमन में
सुमन को रिझाने, बुला ली किसी ने।

☆

पुष्पलता 'माधवी'

पूजती आई सदा

देवता मैं जानकर ही पूजती आई सदा।
नींद में भी जागरण में चौंक कर
मैं रही छूती तुम्हारे ही चरण
सौगन्ध तेरे इन कमल से लोचनों की
पुष्प गहरी भावनाओं के घुला कर
मन्द मुस्कानों सहित मैंने चढ़ाए थे कभी

इस जगत के आदि से व्यापार यह चलता रहा-
मौन मन निष्ठा लिये आशा छिपाए
अन्त तक चलता रहेगा सिलसिला
देवता मैं जान कर ही पूजती आई सदा।

स्वप्न लड़ियों से लुढ़क कर गिर पड़े मोती कहीं से
और कलियाँ कामनाओं की मसल कर
हँस उठे तारे घमण्डी
हाँ, झरोखों से उषा के तो कभी झाँका न था ?
याचनाएँ लौटकर लोचन-पटल में
सिसकियाँ लेने लगेंगी
यह कभी जाना न था -
देवता मैं जानकर ही पूजती आई सदा।

आँसुओं की निर्झरी में बह रहे हैं अर्चना के फूल
यों बिखर कर काल के किस सिन्धु में
मैं उभर विश्राम को तो छू न पाई हूँ
युग-युगों का दर्द सीने में समेटे—
मूक पलकों की जवानी
कह सकी अपनी कहानी
कौन समझा—कौन समझे ?
नैन बिछ कर राह में रोते रहे

और चाहें यों तरसती रह गईं
चाह का मन्दिर स्वयं ढहता रहा
देवता ही जानकर मैं पूजती आई सदा।

ऐ सितारो !

ऐ सितारो ! निज निलय से तुम न टूटो
डोर-नयनों की तुम्हीं से तो बँधी है
आज आशा भी इसी पथ पर चली है
ढूँढने अपना विराम—
इन अन्धेरी औ' उजाली रजनियों में
जाग कर कुछ वेदना कुछ अर्चना भर
नयन कहते ही रहे
आकाश के इन जुगनुओं से तुम न रूठो...
ऐ सितारो ! निज निलय से तुम न टूटो
टूट कर गिर कर सुघड़ जलबिन्दु से
और नैनों की पहुँच से दूर
याद उसकी मत दिलाओ
वे मल्हारें फिर न गाओ
चैन दिल का, सान्त्वना मन की न लूटो
ऐ सितारो ! निज निलय से तुम न टूटो

गोपीनाथ 'व्यथित'

गीत

स्वप्न देखे हैं बहुत, प्रिय ! जागरण दो !
सत्य होना ही नहीं यदि एक सपना,
और बसना ही नहीं संसार अपना,
तो नहीं अच्छा अधिक नाता निभाना,
व्यर्थ है फिर याद करना, याद आना.
इसलिए प्रिय ! आज है अनुरोध तुमसे,
याद लौटा लो, मुझे अब विस्मरण दो !
विश्व का विष आजतक पीता रहा हूँ,
और फिर भी इसलिए जीता रहा हूँ,
तुम जो मेरे साथ हो मैं जी सकूँगा,
मैं न कटुता ही गरल भी पी सकूँगा,
आज जीवन का न कोई लाभ मुझ को,
इसलिए जीवन संभालो, अब मरण दो !
क्यों कहा था, 'नाव को अपनी बढ़ा दे,
मैं तुम्हारे साथ हूँ लंगर उठा दे,'
नाव मेरी चल पड़ी जब धार लेकर
तुम खड़े ही रह गये पतवार लेकर,
अब कहूँ क्या ? जो उचित समझो करो प्रिय,
डूब जाने दो मुझे, या संतरण दो !

आजतक का स्वप्न अब प्रिय सत्य कर दो,
लोचनों से अश्रुकण हर हास्य भर दो,
आज आँखों में समाओ कान्ति वन कर,
और इस जलते हृदय में शक्ति बन कर,
अब तलक प्रिय ! चाप चरणों की सुनी है,
आज पूजा के लिए अपने चरण दो !

●

रामकृष्ण 'भारती'

लक्ष्य

चलते चलो पथिक, अपने पथ,
तुमको विजय-पराजय से क्या ?

चलना ही है काम तुम्हारा,
चलता ही रहता जग सारा,
क्यों फिर तुमने साहस हारा,
गहो निराशा का न सहारा,

अपनी राह बटोही, जाओ,
तुमको जग के विनिमय से क्या ?

लक्ष्य तुम्हारा केवल करना,
तुम को फल से है क्या डरना,

केवल अविरत चलते रहना,
कष्टों पर कष्टों को सहना,
तभी सफलता पग चूमेगी,
असफलता से तुम को भय क्या ?

सागर सम्मुख ठाठें मारे,
चाहे घिर आएँ घन कारे,
चाहे टूटें नभ से तारे,
बिजली गिरे प्रलय फुफकारे,
यात्री, यात्रा लक्ष्य तुम्हारा,
तुमको दुख-सुख सञ्चय से क्या ?

●

उदयभानु 'हंस'

रुबाइयाँ

यौवन के समय प्रेम की क्या बात न हो ?
क्या दिन ही रहे कभी रात न हो ?
सम्भव भी कहीं है यह भला, सोचो तो,
सावन का महीना और बरसात न हो ?

मैं साधु से आलाप भी कर लेता हूँ,
मन्दिर में कभी जाप भी कर लेता हूँ।

मानव से मगर देव न बन जाऊँ मैं,
यह सोच के कुछ पाप भी कर लेता हूँ।

मँझधार से बचने के सहारे नहीं होते,
दुर्दिन में कभी चाँद सितारे नहीं होते।
हम पार भी जायँ तो भला जायँ किधर को ?
इस प्रेम की सरिता के किनारे नहीं होते।

संकट की घटाओं से गुजरना सीखो,
तूफान से टकरा के उभरना सीखो,
जीवन की सघन धूप में कहते रहो,
जीने की अगर चाह तो मरना सीखो।

माँ आज भी सौभाग्यविहीना क्यों है ?
ऋतुराज में सावन का महीना क्यों है ?
ऐ देश के धनिको ! यह कभी सोचा है,
मजदूर के माथे पै पसीना क्यों है ?

●

शरदेन्दु

हिन्द और चीन

एक हाथ उठ रहा है हिम-शिखर के इस तरफ।
एक हाथ उठ रहा है हिम-शिखर के उस तरफ।
मिल रहे हैं हिन्द और चीन,
पृष्ठ खोलती धरा नवीन !

मिल रहे हैं हाथ दो, कि दो जहान मिल रहे।
आठ-आठ बार दस करोड़ प्राण मिल रहे।
हाथ ये उठे हैं शान्ति के लिए,
हाथ ये उठे हैं क्रान्ति के लिए,
शान्ति के विरोधियों के आसमान हिल रहे !
मिल रहे हैं हिन्द और चीन,
पृष्ठ खोलती धरा नवीन !

लाल सूर्य आज पूर्व की दिशा में आ रहा
नव प्रकाश फैलता कि अन्धकार जा रहा !
ज्योति यह नये समाज के लिए,
ज्योति यह नये सुराज के लिए,
ज्योति यह, कि विश्व में न शोषकों का युग रहा।

मिल रहे हैं हिन्द और चीन,
पृष्ठ खोलती धरा नवीन !

एशिया की धमनियों में फिर नया प्रवाह है,
कामना नयी, नये सपन, नया उछाह है।

हम न शक्ति का शिखाव चाहते,
प्यार का नया बहाव चाहते,
प्यार से जगत विजय करें, कि एक चाह है।
मिल रहे हैं हिन्द और चीन,
पृष्ठ खोलती धरा नवीन !

हरिश्चन्द्र वर्मा

मैं भी मानव

तुम को प्राण भुला दूँ कैसे ?
कब लहरों की पीर मिट सकी,
सरिता के तट से टकरा कर ?
कब शलभों की प्रीति जल सकी,
स्वर्ण शिखा पर प्राण लुटाकर ?
संवेदन के इन आँसू से,
तब निज ज्वाल बुझा दूँ कैसे ?

एक वेदना से ही तो गिरि,
भू, अम्बर तड़पा करते हैं।
एक बूँद के प्यासे चातक,
शून्य गगन देखा करते हैं।

चिर मचले अरमानों को तब,
मैं ही प्राण सुला दूँ कैसे ?

यह मादक स्पर्श तुम्हारा,
आज हृदय बरबस लहराया।
नई चेतना की किरणों ने,
चिर सोया अनुराग जगाया।

आज जागरण की वेला में,
सुधि का दीप बुझा दूँ कैसे ?
तुमको प्राण भूला दूँ कैसे ?

●

हेमेन्द्र

एक अनाम-समाधि पर

ओ चपलनयन, हो सावधान,
सौंदर्य, मधुर स्मृति में झुक जा !
ओ सचलचरण, तू संभल ज़रा,
यह है समाधि, क्षण भर रुक जा।

प्रातः समीर हँस-हँस कर जब
फूलों को निर्मम बिखराता,
तब जाग व्यथा से करुणा में
धीरे से कोई गा जाता !

वह राज्य स्वर्ग से भी सुन्दर
नीरवता का संगीत रहा,
है मानव की अनुभूति अमर
युग-युग से सुधि का स्रोत बहा !

यों प्रकृति विमुग्धा देख रही,
सौंदर्य सहज निर्माण कला।
यह चित्र लिखा सा पुष्पनिचय
पाहन में नीरव चेतनता।

परिवर्तन क्रम के सभी दृश्य
आँखों के आगे भूल गये।
कटु सत्य उष्णता पाते ही
मुरझा स्वप्नों के फूल गये।

धू-धू करके जल उठी चिता
इच्छाओं अभिलाषाओं की
पददलित धूल बन गई स्वतः
धूमिल समाधि आशाओं की

संकेत कहाँ वे तारों के,
शारदी चाँदनी रात कहाँ ?
मधुऋतु के स्वर्ण प्रभात कहाँ,
बरसात कहाँ, वह बात कहाँ ?

कुसुमोपम कोमल काया को
पाषाणों का उपधान मिला,
जीवन की ज्योति मिली तम में
वैभव को यह सम्मान मिला।

सौंदर्य, रूप, यौवन, प्रभुता
सब मिलीं धूल में क्षार हुई,
उस क्रूर-काल की निर्ममता
ज्यों यह समाधि साकार हुई।

क्या इस समाधि को क्षणभंगुर
जीवन की निश्चल याद कहें ?
अथवा अपनी भावुकता को
मृगतृष्णा या उन्माद कहें ?

सत्यदेव शर्मा

सत्य और स्वप्न

सत्य से स्वप्न बड़ा सुन्दर
कल्पना सदा सलोनी है।

स्वप्न की है सुन्दर माया
भूलती सब दुःख है काया
प्राण को छलती है छाया

कल्पना उड़ती पंख पसार
खेलती आँख मिचौनी है।
कल्पना सदा सलोनी है।

जागते कटे न दुःख की रात
स्वप्न में सदा मिलन की बात
भाग्य भी होता अपने हाथ

हृदय जगता पर सोते नयन
बात होती अनहोनी है।
कल्पना सदा सलोनी है।

भाव का यह सुन्दर संसार
सदा जगता अलसाया प्यार
यहाँ कब चलती विरह बयार

प्रफुल्लित बारह मास वसन्त
हार ही हर दम होनी है।
कल्पना सदा सलोनी है।

भगवद्दत्त 'शिशु'

गीत

पाकर रसा सुरस जोवन लहराया।
सुन्दर सुयोग में फल उठी यह काया।
चुटकी भर ऊषा ने, चुपके से जगाया।
चारण वन भ्रमर ने, भैरव था गाया।
सुरभित समीर पा, कण-कण मुसकाया।
धरा के स्वागत में, जी में यह आया :—
"दूँ क्या उपहार, हो जो श्रृंगार–
मेरा उपकार कर जीवन सरसाया।
सोचते रात भर, लतिका ने नमन कर,
सुमनों का श्रृंगार भेंट में चढ़ाया।

जगदीश 'सम्राट्'

भूलने वाले सभी हैं

भूलने वाले सभी हैं, कौन किसको याद करता ?
विश्व के उद्यान में हर फूल खिलता चार दिन,
नीलतम आकाश के चल-चित्र सकता कौन गिन ?
तीर तरु के जीर्ण कितने पत्र जल में बह गये,
कान में कलि के मधुप अनजान क्या-क्या कह गये।
उन दिनों का ध्यान सूखे फूल में अवसाद भरता।
वट-वृक्ष की छाया तले पंथी पहर भर लेटते हैं—
बात सुख-दुख की सुना कर मार्ग-श्रम निज मेटते हैं
दो पथिक पथ पर परस्पर दो-पहर हँसकर बिताते
'फिर मिलेंगे' देख पीछे, कह, कदम आगे बढ़ाते।
फासला उर के लजीले चित्र सब बरबाद करता।

रघुवीर सहाय

एक

सिर रख दो मेरे सीने पर,
रोओ मत, बोलो मत।
मुझे तुम्हारा दुख मालुम है,
वह रहस्य खोलो मत।

मैं ही कौन बहुत पोढ़ा हूँ, मुझमें भी कुछ टूट रहा है।
तुम जिस से संचित हो, मेरा वह धीरज भी छूट रहा है।
पर यदि बँधे तुम्हें ढारस इस दुर्बल भुजबन्धन से
तो आओ–

तो आओ, मेरी करुणा को सम्मानित कर जाओ।
अपने लेने भर का बल, आओ, मुझ में भर जाओ
अपने चुप क्रन्दन से ।

दो

पढ़िये गीता,
बनिए सीता,

फिर इन सब में लगा पलीता,
किसी मूर्ख की हो परिणीता,
निज घर-बार बसाइये ।

होयँ कँटीली
आँखें गीली

लकड़ी सीली, तबियत ढीली
घर की सब से बड़ी पतीली
भर कर भात पसाइए ।

●

अरुणेश

संध्या

संध्या आई मृदु हास लिये।

स्मृति का सुन्दर उपहार लिये,
शिशुओं का उर में प्यार लिये,
उत्सुकता का संसार लिये,

यह विहंग वधूटी नीड़ों को,
जाती कितना उल्लास लिये।
संध्या आई मृदु हास लिये।

कृषकों-श्रमिकों की यह टोली,
निज कामों से निवृत होली,
बोली में घोली रस गोली,

इठलाती, गाती, बल खाती,
आती है कुछ नव आश लिये।
संध्या आई मृदु हास लिये॥

रजनीगंधा ने दी बिखेर,
संचित सौरभ का विपुल ढेर,
जगती कहती यह टेर-टेर—

आये मारुत बँध प्रणय पाश,
अंचल में मधुर सुबास लिये।
संध्या आई मृदु हास लिये।

निर्मला माथुर

गायक ! दो क्षण गा लेने दो !

गायक, दो क्षण गा लेने दो !
बीणा के चिर-परिचित स्वर में—
मुझ को जी बहला लेने दो !
फूलों ने क्षण भर ही गाया,
सुरभि-गीत दिक्-दिक् में छाया,
अपने नन्हें से उर का यों
कलिका ने भी प्यार सजाया।
मैं ही शेष रहूँ—क्यों जग में, मुझ को भी कुछ पा लेने दो
मधुर वेदना-दीप सजा है,
तिल-तिल मन का स्नेह जला है !
बन साकार राग दीपक, वह—
आज लगाने आग चला है !
मन की पीर कहाँ जाए रे, कुछ तो ज्वाल बुझा लेने दो

रामेश्वरी शर्मा

नियति-चक्र

यह नियति का चक्र जाने कौन से हाथों से चलता है !

किसी की आँख में मोती,
किसी की आँख में पानी,
किसी की आँख में आँसू—
हलाहल-सा मचलता है ।

किसी की चूमती आकाश को अट्टालिकाएँ,
विभा से वैभवों से युक्त जिनमें नाचती नित अप्सराएँ।
किसी के शीश पर हँसती बिजलियाँ, टूटते तारे,
लगाती होड़ सौ-सौ बार पावस की घटाएँ।
किसी को अपच होता क्षीर से, मधु से अमिय से,
किसी के गूदड़ों का लाल जूठन को मचलता है ।

यह नियति का चक्र जाने कौन-से हाथों से चलता है !

किसी के गात पर ऊषा, विहँसती भाल पर आशा,
मटकती चाल में केकी, कुहुकती कंठ में कोयल,
किसी के गात पर दोज़ख़, मलिन-सी भाल की रेखा,
दुखों से बिलबिलाते प्राण में रौरव कसकता है ।

यह नियति का चक्र जाने कौन से हाथों से चलता है !

शांता गट्टानी

स्मरण

प्रथम पुष्प आयें जब तरु पर,
प्रति वसन्त लतिका का अंचल,
नव समीर से जब जाये भर,

प्रथम कूक कोकिल की सुनकर,
कर लेना तुम मुझे सुस्मरण।

प्रथम शरद-शशि जब धरणी पर,
न्यौछावर करते हों भर-भर,
किरण-करों से मुक्ता सुन्दर,

एक अश्रु मेरा भी गिनकर,
कर लेना तुम मुझे सुस्मरण।

व्यथा-भार से भर-भर आये,
असमय में तव हृद अति कोमल,
नयनों से भी निकल न पाये,
जब चिर संचित हृद-गंगाजल,

एक बार तब मन ही मन में,
कर लेना तुम मुझे सुस्मरण।

सुधा खरे

गीत

मैं पतझर की दुलहन हूँ, मुझ से मधुमास न पूछो ।
मेरी अभिलाष न पूछो ।

मेरी आँखें भर आतीं, मेरे हँसने से पहले,
मुझको छलने आते हैं मेरे ही स्वप्न सुनहले,
मैं बुझती दीप शिखा हूँ, मेरा इतिहास न पूछो ।
पहला उपहास न पूछो ।

मैं नीड़ बनाने आई, तूफान स्वयं ले आई,
अपने तिनकों की दुनिया मैंने ही आप मिटाई,
मैं मुरझाई कलिका हूँ, मुझसे उल्लास न पूछो ।
फागुन का हास न पूछो ।

सो जाते हैं तारे भी पर मुझको नींद न आती,
ऋतुराज जगत में आता तो मैं नीरस मुरझाती,
मैं मद की टूटी प्याली, तुम मेरी प्यास न पूछो ।
मदिरा का लास न पूछो ।

●

स्वर्णलता शर्मा

प्यार बाकी है

सिसकते शुष्क अधरों पर अभी कुछ प्यार बाकी है।
विकसती मञ्जु कलियों पर अभी गुञ्जार बाकी है।

धधकती आग में मन की
मिले दो अश्रु आलिंगन
चिता में भी सदाओं की
मिले संसार के चिंतन

तड़पती जिन्दगी में स्वप्न का संसार बाकी है।
सिसकते शुष्क अधरों पर अभी कुछ प्यार बाकी है।

जलाए दीप प्रिय तुमने
बुझाए क्रूर झन्झा ने
निशा के श्याम सागर में
झुकाए नैन तन्द्रा ने

निशा के आगमन में भी दिवस का सार बाकी है।
सिसकते शुष्क अधरों पर अभी कुछ प्यार बाकी है।

हृदय तब हो चला चंचल
लिये जब मूँद दो लोचन

खिलाकर हास अधरों पर
छिपाए प्राण के क्रन्दन
हृदय की धड़कनों में पर प्रणय का ज्वार बाकी है।
सिसकते शुष्क अधरों पर अभी कुछ प्यार बाकी है।

●

मोहिनी गौतम

अभाव

मैं वह मद हूँ जिसमें आली
रस-रास रंग का लास नहीं,
वह यौवन हूँ जिसमें कोई
उन्माद, नाद, उल्लास नहीं।

ऐसा सुहाग जिसमें रहता
प्रियतम का किंचित राग नहीं,
उस मदिरा की प्याली हूँ मैं
जिस में उन्मत्त विलास नहीं।

सुख ऐसा हूँ जिसमें निशि दिन—
ही टीस सलोनी मुस्काती,
परवाने की नाकाम लगन
जो स्नेह न दीपक से पाती।

मैं सरिता हूँ जिस में आली
लहरों का नाम निशान नहीं,
वह खण्डहर हूँ जिसके दिल में
बस जाने का अरमान नहीं।

●

भगवती देवी 'विह्वला'

गान मेरे

तुम अमर हो, मैं अमर हूँ, हैं अमर मधुगान मेरे।

नीर, नभ, क्षिति, आग निर्मित दीप जीवन का मनोरम,
लग्न की ले ज्योति, तम को हर रहा, जलता प्रणय सम,
तुम शलभ क्यों गुनगुनाते, भाव हैं अनजान मेरे।

इस गगन की यामिनी में जल रहे हैं दीप कितने,
यह न कोई जानता इनमें भरा है स्नेह किसने,
वे सरस इसको करेंगे जो बने भगवान मेरे।

दीप के आलोक से तब पंथ का आभास होगा,
आवरण को दो हटा प्रिय ! तब मुझे विश्वास होगा,
फिर तुम्हारी ज्योति में ही लीन होंगे प्राण मेरे।

●

विश्वेश्वरप्रसाद 'मुनव्वर'

चार रुबाइयाँ

खैय्याम की आत्मा का विस्तार करूँ,
कविता में सुप्राण का संचार करूँ,
संसार उठाये लाभ इन से न उठाये,
अपने हित के लिए यह उपकार करूँ।

यह अस्त है क्या, क्या यह उदय है प्यारे,
अब इसके समझने का समय है प्यारे,
जीवन की समस्याओं की हो पूर्त्ति अवश्य,
मेरी तुमसे यही विनय है प्यारे!

यह युग न गरल का न सुधा का युग है,
यह युग न यम का न सुरा का युग है,
इस युग में विकास सब अनोखे होंगे,
यह युग तो नवीन आत्मा का युग है।

प्राची दिशि में अरुण के दर्शन कर ले,
शैशव में सिद्धहस्त यौवन भर ले,
यह देह, यह प्राण, यह हृदय, यह मस्तिष्क,
जीवन सागर में भाव का मंथन कर ले।

●

डा० विमल कुमार जैन

अतीत का रोना क्या ?

अब है अतीत का रोना क्या !
मधुर निशा के स्वप्न-जाल में
पड़ पाई निधि कनक थाल में
खोकर रोया उषा-काल में
अब स्वप्न मधुर का खोना क्या !

चन्दा, तुम नाचे रजनी-भर
दिन निकला तो तुम दुख-कातर
जो अपराध हुआ रजनी में
उसको रो-रोकर धोना क्या !

उन्नत अम्बुद ! गर्व किया तब
गिरि चढ़ने का यत्न किया जब
फिर असफलता पर ही अम्बुद
इतना चिन्तातुर होना क्या !

जग में फैल रही है लाली
खेतों में दौड़ी हरियाली
तम का शासन बीत गया है
अब दिन निकले पर सोना क्या !

विजयचन्द्र जैन

जवानी उभरना चाहती है।

टूट जायेंगे सभी वन्धन
जवानी पर लगाये जो विगत संसार ने
कि जवानी अब उभरना चाहती है।

ये नियम, संयम सभी छलना हृदय की
थे बनाये, स्वार्थ-रत, जो कल मनुज ने
पर हिमालय की उठन को रोक सकता कौन ?
बद्ध यौवन अब उभरना चाहता है।
टूट जायेंगे सभी बन्धन पुराने जो हजारों साल के हैं।
संस्कारों की अरे वह छाप
कह रहे जिसको अमिट तुम
हो गई धुन्धली बहुत ही
और कल मिट जायेगी ऐसे हृदय से
स्लेट बच्चे धो दिया करते कि जैसे।
तो जवानी का अभागा खग, कि जो
कल तक बँधा था, रूढ़ियों की शृंखला में
आज देखो हो गया आजाद !
काट दी जंजीर उसने
आज जख्मी चोंच से

मुक्त नभ में उड़ चला वह
जाँचने अवशेष पंखों की उड़ान !

जयदेव शर्मा

गीत

ान बदलती जा रही है जिन्दगी के गीत की।

दूर कोई रात में कुछ
गुनगुनाता जा रहा।
यूँ अकेले में किसी का
साथ पाता जा रहा।

और लगता कह रहा कुछ हार भी कुछ जीत भी।

चमचमाते हैं सितारे
पर न हो पाता उजाला।
रात कुछ काली घनेरी
और कुछ पथ भी निराला।

कुछ समझ आती नहीं गति प्रीति के संगीत की।

जा रही रजनी अनोखी
मगर होगी प्रात कैसी !
जीत ही धुन्धली रही तो
प्राण, होगी मात कैसी ?

आह, बदलो जा रही है जिन्दगी की रीत भी।

अजीत कुमार विन्दल

मालूम नहीं था

लजीले नयनों का उपहार
लिया था मैंने हाथ पसार
मुझे मालूम नहीं था–
फिर मधुमास नहीं आएगा !

बसाने छोटा सा संसार
जमा कर बैठा तिनके चार
मुझे मालूम नहीं था
जीना रास नहीं आएगा !

घटा घिर-घिर आती घनघोर
गरजते बादल करते शोर
मुझे मालूम नहीं था
प्रियतम पास नहीं आएगा !

कल्पना का भावुक तूफान
जला करते पल-पल अरमान
मुझे मालूम नहीं था
फिर मृदु-हास नहीं आएगा !

●

मनमोहन गौतम

गीत

क्या पथिक चले ही जाओगे ?
नैनों के मौन निमंत्रण को
जीवन के, उर के बन्धन को
क्या निर्मम हो ठुकराओगे ?
अन्तरतम की मृदुतर वाणी
कुछ तो सुन लो निर्मम प्राणी
क्या जीवन गीत न गाओगे ?
देखो यह रात सुहानी है
करता तम भी मनमानी है
क्या दीपक नहीं जलाओगे ?

●

प्रेम देहलवी

तीन रुबाइयाँ

१

आकाश पै सावन की घटा छा जाय
बरसे जो यह बदली तो प्रलय ढा जाय
दो मद भरे प्याले हैं तुम्हारी आंखें
झुक जायँ तो संसार को नींद आ जाय

२

मन जिसको समझता है मृदुल सी झंकार,
संसार जिसे कहता है करुणा की पुकार।
आँखों में लिए प्रेम की गंगा-यमुना,
योगिन कोई संगम पै बजाती है सितार।

३

जब गीत कोई प्यार भरा गाया है,
आशाओं का सागर सा उमड़ आया है।
वह दृष्टि जो पाषाण को पानी कर दे,
हर रूप में मैंने उसे अपनाया है।

●

श्रीकृष्ण अग्रवाल

गीत

मुझे ऐसी पतवार न दो

चाँद की शत-शत पलकें चूम
बिछा नयनों के मधुरिम जाल,
विश्व में फैला कर आलोक
मुझे तम का संसार न दो।

कभी आधा अवगुण्ठन खोल
कभी घूँघट की आधी ओट,

उठा दे खुद ही जो तूफ़ान
मुझे ऐसी पतवार न दो।

नयन में तो सागर गम्भीर
उदधि में भी जलती है आग,
जहाँ जलना, बुझना ही सार
मुझे तुम ऐसा प्यार न दो।

●

जगदीश 'बेचैन'

युग बदल रहा

भूमि को नया समाज चाहिये, क्योंकि युग बदल रहा।
नया सृजन पुकारता
नया चमन पुकारता
नवीन मोड़ पर खड़ा
तुम्हें अमन निहारता
प्यार का नया जहाज चाहिये, समुद्र जब मचल रहा।

प्यार दो मनुष्य को
दुलार दो मनुष्य को
नौजवान मौत से
उभार लो मनुष्य को
समाज को नया रिवाज चाहिये, क्योंकि जग बदल रहा।

यह नवीन राह है
यह जवान चाह है
ज़मीन पर अतीत को
पुकारना गुनाह है
राह फिर नवीन आज चाहिये, क्योंकि पग बदल रहा।

ईश्वरचन्द 'विकल'

सोच समझ कर !

सोच समझ कर दीप बुझाना !
दीप सदा आलोक लुटाता
घिर आते जब तम के बादल
दीप सदा अंधियार मिटाता
अपनी ज्वाला में तिलतिल जल
जीवन दान दिया हो जिसने,
उचित भला क्या उसे मिटाना ?

दीप किसी की जीवन आशा
यह जीवन आधार किसी का
इसमें नेह किसी का जलता
प्रीत भरा संसार किसी का
दीपक का यह जीवन क्रम है,
ज़लना औ' फिर ज्योति जगाना।

आज इसे जल जी लेने दो
जीना है अधिकार इसी का
जिसने जान लिया हो पर दुःख
जीवन है साकार उसी का
है सजीव उपहार इसे मत
नादानी से आज गँवाना।

●

प्राणनाथ कालरा

यह तहज़ीब

हमने तहज़ीब बनाई
पर उसे बेच दिया
हमने तहज़ीब के बदले
जो रोटी मांगी
आज कहते हैं आप
हम को तहज़ीब नहीं आती
आपकी तहज़ीब बड़ी सुन्दर है !
जिसमें राजाओं की जूती के तले
आज तक सैकड़ों मजदूर, किसान
पैदा करते ही रहे दौलत को
और राजाओं ने उस दौलत से

अपने दरबारों में
'ऊँची' तहजीब के हर पहलू को
सँवारा बड़े दानी बन कर
नाच, संगीत-कला कौशल
'कालीदास', 'हर्ष', और 'ज़ौक'
आपके पैरों में पड़ते आज
सबने तहज़ीब के बदले में जो रोटी मांगी !
आप की तहज़ीब बहुत ऊँची है
जहाँ और कौमें न पहुँच पाई हैं
ऊँची अट्टालिकाओं के कलश
गगन को छूआ चाहते जो
कितनी गहराइयों में जाती हैं
उनकी नीवें, जो कभी हिल न सकीं
उन को पाने के लिये इतना बैर,
मगर वे इनके बनाने वाले ?
वे तो होंगे ही कोई गँवार मनुष्य
जिनको कलचर का पता नाम नहीं
जिनको कलचर से काम नहीं ।

जवाहर चौधरी

मेरा साथी

मैं उसी के पास साथी !
मैं उसी के साथ साथी !
खून जिस का लाल हो
मेरी तरह ही
ज़िन्दगी से प्यार हो
मेरी तरह ही
जिसकी आँखों में मशालें
चमकती हों
जिसके हाथों से सलाख़ें
टूटती हों
जिसके क़दमों से गुलामी
काँपती हो
मुक्ति जिसकी पेशियों से
झाँकती हो
जिसके चेहरे पर मनुज का ओज, श्रम-बल
चमकता हो
शैतान के प्रति क्रोध और प्रतिशोध जिस में
मचलता हो

हुक्म से जिस के बदल दे रुख हवा
औ' इशारे पर थिरकती हो जमाने की अदा
मैं उसी फ़ौलाद का, चट्टान का हूँ;
इन्सानियत के मैं उसी तूफ़ान का हूँ;
मैं उसी मजलूम और महरूम का हूँ;
मैं उसी दहकान और मज़दूर का हूँ;
जो बढ़ाता मित्रता का हाथ साथी !
जो उठाता मनुज की आवाज़ साथी !
मैं उसी के पास साथी !
मैं उसी के साथ साथी !

●

वीरेन्द्रकुमार

कब रेखाओं में रंग भरोगे ?

आज बता दो इन रेखाओं में कब नव रंग भरोगे प्रियतम !
कह दो कब कुछ लिख देने का
मैंनें तुमको भार दिया था ?
फिर इन सूनी रेखाओं से
क्या मुझ पर उपकार किया था ?
नहीं तूलिका कहीं गयी है,
नहीं रंग बिखरे हैं सारे,

किन्तु तुम्हें पिघला लेने में
आज अश्रु हारे हैं खारे।
निर्मोही, मेरे अन्तर से अब-कब मोह करोगे प्रियतम ?

आग लगा कर भी हँसते हो ?
हा ! तुम आँखों के कोनों से
मैं समझा था ढुलका दोगे
मोती कुसुमों के दोनों से।
तुम जानो, भोली आँखें तो
पल-पल राह निहार रही हैं,
चित्रपटी पल-पल सपनों में
पा कूँची का प्यार रही है।
कब कह दो मम अमर वेदना औ' यह पीर हरोगे प्रियतम ?

●

नरेन्द्रपाल 'नरेश'

कैसे भुला दूँ ?

मैं तुम्हारी याद को कैसे भुला दूँ ?
चित्र चित्रित कर हृदय में वेदना के गान गाये।
देख कर मुझ को विवश अरमान मेरे लड़खड़ाये।
मैं उसी तस्वीर को कैसे जला दूँ ?

काँपता-सा, मुस्कराता चाँद चलता है गगन में।
चल रहा है या तुम्हारे रूप का बादल नयन में।
स्वप्न को भी नींद में कैसे सुला दूँ ?

सिन्धु में पीड़ा भरी है और आतुरता मलय में।
तुम बसे महमान बन मेरे विचारों के निलय में।
मैं जहर महमान को कैसे पिला दूँ ?

●

सोमदत्त गौड़

यहाँ सभी अजीब हैं

रात के प्रदीप आप बुझ गये
और चाँद साथ-साथ जल गया
आसमान गल गया
पर न प्रात आ सकी।

दीप वाट जोहता
आ गया पतंग भी
चूम प्यार से लिया

दीप ने उसे मगर
खाक में मिला दिया।
भंवर पुकारता रहा

तट न पास आ सका,
उदास सिन्धु क्योंकि चाँद दूर है ।
प्रात में गुलाब हँस पड़ा

निगाह रो उठी
ओस से भरी ज़मीन कह उठी—

यहाँ अजान हैं ।
न प्रीत है, न भीत है ।
न हार है, न जीत है ।

●

मदनलाल भाटिया

प्यार का तूफ़ान

भावनाओं की निविड़ गहराईयों में
तर रही है याद की नौका ।
स्वप्न की पतवार ऐसी है
कि आँखों में बसी है
पर दिखाई दे नहीं पाती
अनुभवों के आ गए तूफ़ान
उठ रही सन्देह की आँधी भयंकर ।
पार होगा महासागर
किस तरह जो

स्नेहतर, जल से भरा है
कान वैभव के बहुत बहरे
कि उनमें, जा नहीं पाते कभी भी
आत्मा के शब्द ।
वह न मानेगा भला सौन्दर्य को क्या,
सत्य को जो मानता है
और इनके साथ ही रहता 'शिवम्' है
सत्य, शिव, सौन्दर्य, इकला प्यार है
इसलिये
यह प्यार का तूफ़ान, सर पर ओढ़ लो !

किशोर

रो दूँगा !

मत पूछो तुम मेरा परिचय,
परिचय में केवल रो दूँगा ।
मेरे जीवन में हँसने के
क्षण भूले से ही आते हैं,
गाओ न मल्हारें ऐसे में
मेरे लोचन भर जाते हैं,
मैं नैनों के घन-खण्डों से
यह सारा विश्व भिगो दूँगा ।

मेरे यौवन के उपवन में
खिलने को कोई फूल नहीं,
मेरे जीवन की नौका का
आधार, किनारा, कूल नहीं,
वह दिन अवश्य ही आयेगा
खुद अपनी नाव डुबो दूँगा ।

रमेश 'तरुण'

राम-राज्य

मेरा एक पड़ौसी अन्धा है,
पटरी पर बैठा बीड़ी-सिगरेट बेचा करता
आभास न होने देता, पीड़ा का सागर लहराता ।
बोला—
"बाबू जी एक निवेदन है,
लड़की शाला जाने को रोज़ मचलती है,
फ़ीस यदि माफ़ करा दें तो अच्छा
नहीं भीख माँगना मेरे बस का ।"
मैंने उसकी अन्धी आँखों में—
क्या देखा, कुछ देखा तो ।
"अच्छा करवा दूँगा ।"

लेकर आया, पास हमारे थी शाला।
शाला की दीवारों पर
आदर्श वाक्य थे लिखे हुए——
"अमीर-गरीब का भाव मिटा दो।
ऊँच-नीच की नींव हिला दो।"
आफिस के कमरे में सबसे ऊँचा,
गाँधी जी का चित्र टँगा था,
कुर्सी पर बैठी देवी जी बोलीं——
"कैसे आये ?"
"बच्ची को दाखिल करवाने।"
"जगह नहीं है।"
"मैं था हक्का-बक्का।
मोटे-ताजे लाला आये।
पूरे थुल-थुल तोंद फुलाये,
बोले——
"देवी जी, लड़की कैसी चलती है ?
दिन भर झगड़ा करती बच्चों से घर
माँ को भी अपनी दो-चार सुना देती है।"
देवी जी बोलीं——
"वाह ! यह तो बच्ची का विकसित-व्यक्तित्व

बड़े-बड़ों को भी यदि डाँट-डपट देती है,
ऐसे बच्चों को तो स्कालरशिप मिल जाती है;
छोटी लड़की को शीघ्र भेज दें
दो-चार जगह अब भी खाली हैं।"
लाला जी चले गये करके कुछ मीठी-मीठी बात।
"ये रामराज्य के प्रबल समर्थक—
बापू के अच्छे बेटे हैं ?"
कुर्सी छोड़ उठी, देवी जी !
मैं वहीं खड़ा—
"गये नहीं तुम
अच्छा कल ले आना।"
फिर चलती-फिरती बोलीं—
"लड़की ! देखो,
कपड़े ठीक पहन कर आना।"
बाहर आया बच्ची को लेकर
लड़की रोई हूक मार कर—
"अच्छे कपड़े तो पास नहीं,
कल कैसे पढ़ने आ पाऊँगी ?"
रुँध गया गला,
धीरज देता बोला—
"रो मत मेरी बेटी,

ये एक लँगोटी वाले के—
उपदेशों के प्रति-पालक हैं ?"

●

भ्रमर

अभिशाप बन गया

सुमुखि तुम्हारा परिचय मुझको,
अन्तहीन अभिशाप बन गया।

चन्द्र चकोरी के जीवन की,
साध सदा से रहती आई,
अपना, शलभों की मादकता,
दीप-शिखा को कहती आई—

'मुझको तो अपनत्व तुम्हारा,
मूलरूप सन्ताप बन गया।'

संभोगों पर ही अवलम्बित,
किस राही की राह नहीं थी ?
सरिता से मिलने की सागर,
के दिल में कब चाह नहीं थी ?

क्षणिक अपरिचित मेल तुम्हारा,
विरहातुर को शाप बन गया।

नित्य उपासक आते फिर भी,
तो अभिलाष बनी रहती है ।
प्रिय-दर्शन में साधक के,
मनकी तो आश बनी रहती है ।

शुभे, तुम्हारा दर्शन सच कहता हूँ,
मुझको पाप बन गया ।

कवि-परिचय

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जन्म : १८९७, जन्मस्थान : ग्वालियर

रचनाकाल : लगभग ३५ वर्ष

कविता-संग्रह—कुमकुम, अपलक, क्वासि, आदि। उर्मिला महाकाव्य छप रहा है।

प्रतिष्ठित राष्ट्रीय कवि और वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ नेता।

उदयशंकर भट्ट

जन्म : १८९८, जन्मस्थान : आगरा (उत्तर प्रदेश)

रचनाकाल : लगभग २५ वर्ष

कविता-संग्रह—एकला चलो, युगदीप, कल्पना और यथार्थ, और कई गीत नाट्य।

प्रसिद्ध नाटककार और कवि, आल इण्डिया रेडियो के सलाहकार।

अज्ञेय

जन्म : १९११, जन्मस्थान : 'चिन्ना'

कविता-संग्रह—भग्नदूत, इत्यलम्, हरी घास पर क्षणभर।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार और प्रयोगवादी कवि, आल इण्डिया रेडियो में हैं, अंग्रेजी में भी लिखते हैं।

डाक्टर नगेन्द्र

जन्म : १९१५, जन्मस्थान : अतरौली (अलीगढ़)

रचनाकाल : लगभग २० वर्ष

देव नागर के सम्पादक, हिन्दी के ख्यातिनामा आलोचक और निबन्धकार, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं।

गिरिजाकुमार माथुर

जन्म : १९१७

रचनाकाल : लगभग १२ वर्ष

कविता-संग्रह—मंजीर, नाश और निर्माण।

पहले 'तार सप्तक' के प्रतीकवादी कवि। संयुक्त राष्ट्र संघ के रेडियो विभाग में काफी दिन अमरीका रहे। आजकल लखनऊ रेडियो केन्द्र पर उप-स्टेशनडाइरेक्टर (ए. एस. डी.) हैं।

प्रभाकर माचवे

जन्म : २६ दिसम्बर १९१७

रचनाकाल : लगभग २३ वर्ष

रचनाएं : एक दर्जन के लगभग।

'तार सप्तक' के कवि। आप भी रेडियो में हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी

जन्म : मई १९०८, पंजाब

रचनाकाल : लगभग २० वर्ष

कविता-संग्रह—'बन्दनवार'। पंजाबी में कई कविता-संग्रह छपे हैं। लोग-गीतों के प्रसिद्ध संग्रहकार, कहानी लेखक, उपन्यासकार और पत्रकार, 'आजकल' के सम्पादक।

गोपालप्रसाद व्यास

जन्म : माघ शुक्ल १०वीं सं० १९७२, स्थान : पारासोली (मथुरा)

रचनाकाल : लगभग २० वर्ष। हास्यरस के लोकप्रिय कवि, व्यंगकार और पत्रकार। 'हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय विभाग में हैं।

कविता-संग्रह—नया रोजगार, 'उनका पाकिस्तान', अजी सुनो 'मैंने कहा', कदम-कदम बढ़ाये जा, वीररस का खंड-काव्य आदि।

शम्भुनाथ 'शेष'

जन्म : १९१५, स्थान : फरीदकोट (पंजाब)

रचनाकाल : लगभग १५ वर्ष

कविता-संग्रह—उन्मीलिका और सुवेला।

हिन्दी में रुबाइयात और गज़ल के शब्दशिल्पी, रेडियो में हैं।

देवराज 'दिनेश'

जन्म : १९२२

रचनाकाल : १२ वर्ष के लगभग

कविता-संग्रह—अन्तर्गीत। लोकप्रिय कवि, सफल नाटककार और अभिनेता।

चिरञ्जीत

जन्म : दिसम्बर १९१९, स्थान : अमृतसर (पंजाब)

रचनाकाल : १२ वर्ष

कविता-संग्रह—'चिलमन'

पत्रकार और एकांकीकार, जनसत्ता के सम्पादकीय विभाग में हैं।

रामावतार त्यागी

जन्म : जुलाई १९२५, स्थान : कुरकावली (मुरादाबाद)

रचनाकाल : लगभग ८ वर्ष

कविता-संग्रह—नया खून, सिकन्दर (खण्ड-काव्य छप रहा है। प्रगतिशील कवि और लोकप्रिय गीतकार।

गोपालकृष्ण कौल

जन्म : सन् १९२३

रचनाकाल : लगभग १० वर्ष

प्रगतिशील आलोचक और प्रसिद्ध कवि, 'नवयुग' साप्ताहिक और आलोचना त्रैमासिक के भूतपूर्व संयुक्त सम्पादक।

बाबूराम पालीवाल

जन्म : २५ अक्तूबर १९०७, स्थान : ग्राम कुर्री (आगरा)

रचनाकाल : लगभग १२ वर्ष

कविता-संग्रह—चेतना, कनक-किरण, बाल कविताओं के संग्रह ।

शान्ति सिंहल

जन्म : २ मार्च १९२२, स्थान : दिल्ली

रचनाकाल : १७ वर्ष

कविता-संग्रह—अर्मिन माल और अलका । हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री ।

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

जन्म : १९१७, स्थान : बाबूगढ़ (मेरठ)

रचनाकाल : लगभग १७ वर्ष

कविता-संग्रह—कारा, बन्दी के गान ।

पत्रकार, कवि और आलोचक । आपकी पुस्तकें कक्षा 'अ' से एम. ए. तक पढ़ाई जाती हैं ।

रामानन्द 'दोषी'

जन्म : ११ फरवरी १९२१

रचनाकाल : लगभग ५ वर्ष

कहानीकार कवि, हिन्दुस्तान दैनिक के सम्पादकीय विभाग में हैं ।

विनोद शर्मा

जन्म १४ मार्च १९२६

रचनाकाल : लगभग ८ वर्ष

सुन्दर कवि, नाटककार, अभिनेता और गायक । रेडियो में हैं ।

प्रयागनारायण त्रिपाठी

जन्म : २५ अगस्त १९१९, स्थान : रायपुर (रायबरेली)

रचनाकाल : लगभग १३ वर्ष

कवि और पत्रकार। भारत सरकार के प्रकाशन विभाग में हैं।

इन्द्रप्रताप तिवारी

जन्म : अगस्त १९२१, स्थान : फैज़ाबाद

रचनाकाल : १० वर्ष के लगभग

कवि और कहानीकार, अंग्रेजी के भूतपूर्व पत्रकार। भारत सरकार के सूचना विभाग में हैं और अमृत-बाज़ार-पत्रिका में काम किया।

जगदीश 'विद्रोही'

जन्म : ५ अक्टूबर १९२८, स्थान : गोमोह (बिहार)

रचनाकाल : ५ वर्ष। पत्रकार और कवि, सार्वजनिक कार्यकर्ता।

ईशकुमार 'ईश'

जन्म : ७ दिसम्बर १९२१

रचनाकाल : लगभग १५ वर्ष

कवि और समाजसेवी। दिल्ली म्युनिसिपल बोर्ड मे काम करते हैं।

बलवीर सहाय

जन्म : १९२५, स्थान : बरेली (उत्तर प्रदेश)

रचनाकाल : ५ वर्ष। कहानीकार और कवि। उपन्यास भी लिखते हैं।

पुष्पलता 'माधवी'

जन्म : २१ अगस्त १९२१, जन्मस्थान : भटिण्डा

रचनाकाल : १५ वर्ष। कहानीलेखिका और कवयित्री।

गोपीनाथ 'व्यथित'

जन्म : १ जनवरी १९१९, जन्मस्थान मुलतान (पंजाब)

रचनाकाल : लगभग १० वर्ष। सुपरिचित कवि।

रामकृष्ण 'भारती'

जन्म : १२ नवम्बर १९१७

रचनाकाल : १० वर्ष के लगभग

कविता-संग्रह—'निर्झर'। कवि और अध्यापक।

उदयभानु 'हंस'

जन्म : १७ श्रावण सं० १९८३ वि०

रचनाकाल : ९ वर्ष। रुबाइयात और गज़ल के कवि।

शरदेन्दु

जन्म : १९२५, जन्मस्थान : जलेसर एटा

रचनाकाल : लगभग ८ वर्ष। कवि एवं पत्रकार हैं। हिन्दुस्तान साप्ताहिक के सम्पादकीय विभाग में हैं।

हरिश्चन्द्र वर्मा

जन्म : १९२४, स्थान : मुरार (ग्वालियर)

रचनाकाल : लगभग १० वर्ष

कवि, पत्रकार और रूपकलेखक, साथ ही सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं।

हेमेन्द्र

जन्म : ४ सितम्बर १९५३, स्थान : बरेली

रचनाकाल : लगभग ४ वर्ष

कहानीकार एवं कवि। आप रेडियो में हैं।

सत्यदेव शर्मा

जन्म : २४ अक्टूबर १९१२, स्थान : विलवा (जालन्धर)

रचनाकाल : १७ वर्ष

कहानी लेखक, कवि और रेडियो-रूपककार।

भगवद्दत्त 'शिशु'

जन्म : सन् १९२३, स्थान : जिला मेरठ

रचनाकाल : लगभग १० वर्ष

कविता-संग्रह—ओजस्विनी, निर्झरनी और रसगागर

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री वियोगी हरि के सुपुत्र।

जगदीश 'सम्राट्'

जन्म : १९२३, स्थान : फुलरुवा

रचनाकाल : लगभग ८ वर्ष। प्रगतिशीलता के हामी कवि।

रघुवीर सहाय

जन्म : ९ दिसम्बर १९२९

रचनाकाल : ७ वर्ष

'दूसरे सप्तक' के कवि। आल इण्डिया रेडियो में हैं।

करुणेश

जन्म : अमावस्या श्रावण सं० १९५२ वि०

रचनाकाल : २० वर्ष के लगभग

वयोवृद्ध कवि और राजधानी में हिन्दी के पुराने कार्यकर्ता।

निर्मला माथुर

जन्म : १९२६, स्थान : दिल्ली

रचनाकाल : लगभग १२ वर्ष। कवयित्री, चित्रकार, मूर्तिकार।

रामेश्वरी शर्मा

जन्म : १५ जुलाई १९२३, स्थान : गाजि़याबाद

रचनाकाल : लगभग १३ वर्ष

सुपरिचित कहानी लेखिका, कवयित्री और हिन्दी के प्रसिद्ध पत्रकार श्री महावीर अधिकारी की 'श्रीमती जी'।

शान्ता गट्टानी

जन्म : ४ नवम्बर १९२७

रचनाकाल : १० वर्ष के लगभग

कविता-संग्रह—मन्दाकिनी। पहले शांता राठी के नाम से लिखती थीं।

सुधा खरे

जन्म : १६ अगस्त १९३१, स्थान : नागपुर

रचनाकाल : एक वर्ष। नवोदित कवयित्री।

स्वर्णलता शर्मा

जन्म : ११ अप्रैल १९३४, स्थान : दिल्ली

रचनाकाल : ३ वर्ष। नवोदित कवियत्री।

मोहिनी 'गौतम'

जन्म : १९२३, स्थान : लखनऊ

रचनाकाल : लगभग ४ वर्ष

नवोदित कवयित्री और कहानी लेखिका।

भगवती देवी 'विह्वला'

जन्म : अगहन शुक्ल पक्ष २, सं० १९६३ वि०, स्थान : होडल (दिल्ली)

रचनाकाल : १० वर्ष। पुरानी कवयित्री एवं अध्यापिका।

विश्वेश्वर प्रसाद 'मुनव्वर'

जन्म : सं० १८९७, जि० लखनऊ।

रचनाकाल : लगभग २० वर्ष

उर्दू में करीब आधी दर्जन से अधिक पुस्तकें; अंग्रेजी और संस्कृत के ग्रन्थों के अनुवादक; उर्दू के प्रतिष्ठित शायर, हिन्दी में भी कविता लिखते हैं।

विमल कुमार जैन

जन्म : १९१२, स्थान : आगरा

रचनाकाल : लगभग ५ वर्ष

हिन्दी में पी-एच० डी० हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के उपाध्याय, पाठ्य पुस्तकों के लेखक।

विजयचन्द्र जैन

जन्म : १९३०, स्थान : दिल्ली

रचनाकाल : ४ वर्ष। नवोदित कवि और प्रयोगों के समर्थक।

जयदेव शर्मा

जन्म : १९२७, जालन्धर

रचनाकाल : २ वर्ष। नवोदित कवि एवं कहानीकार।

अजीतकुमार बिन्दल

जन्म : १५ मार्च १९३३, स्थान : डिप्टीगंज दिल्ली

रचनाकाल ३ वर्ष। नवोदित गीतकार।

मनमोहन गौतम

जन्म : १९१७, स्थान : इलाहाबाद

रचनाकाल : लगभग ५ वर्ष

इतिहास और निबन्ध की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

प्रेम देहलवी

जन्म : श्रावणी शुक्ला ८वीं सं० १९७२, स्थान : दिल्ली

रचनाकाल : १० वर्ष

उर्दू के प्रसिद्ध शायर और हिन्दी के नये कवि।

श्रीकृष्ण अग्रवाल

जन्म : ३० मई १९३४, स्थान : दिल्ली

रचनाकाल : ३ वर्ष। नवोदित कवि।

जगदीश 'बेचैन'

जन्म : १९३८, स्थान : दिल्ली

रचनाकाल : डेढ़ वर्ष। नवोदित कवि एवं कहानीकार।

ईश्वरचन्द 'विकल'

जन्म : मई १९२५, स्थान : मुलतान

रचनाकाल : ५ वर्ष। कवि और निबन्धलेखक।

प्राणनाथ कालरा

जन्म : १५ मार्च १९२३, डेरा इस्माइल खां

रचनाकाल : ४ वर्ष। नवोदित कवि।

जवाहर चौधरी

जन्म : मार्च सन् १९२६

प्रगतिशील लेखक संघ के उत्साही कार्यकर्ता, 'आदर्श' मासिक पत्र का सम्पादन किया। आजकल सोवियत रूस के भारत स्थित दूतावास के कार्यालय में काम करते हैं।

वीरेन्द्र कुमार गुप्त

जन्म : १९२८, स्थान : सहारनपुर

रचनाकाल : लगभग ४ वर्ष। नवोदित कवि।

नरेन्द्रपाल नरेश

जन्म : १ अक्टूबर १९३१, विलराम (एटा)

रचनाकाल : ८ वर्ष। कवि और चित्रकार।

सोमदत्त गौड़

स्थान : रिवाड़ी

रचनाकाल : २ वर्ष । नवोदित कवि ।

मदनलाल भाटिया

जन्म : सन १९२८, पंजाब

रचनाकाल : लगभग ३ वर्ष । नवोदित कवि ।

मुरारीलाल 'किशोर'

जन्म : २ मार्च १९३२, स्थान : बुलन्दशहर

रचनाकाल : २ वर्ष । नवोदित कवि ।

रमेश 'तरुण'

जन्म : अक्टूबर १९३१, स्थान : कोट पुतली (राजस्थान)

रचनाकाल : ६ वर्ष

नवोदित कवि, नाटककार एवं निबन्ध लेखक ।

'भ्रमर'

जन्म : १३ अप्रेल १९३२

रचनाकाल : २ वर्ष । नये कवि और निबन्धकार ।